❀ श्री कृष्णाय नम. ❀

श्री पं० जयदेवकविविरचितम्—

श्री गीतगोविन्दम्

राधाविनोदकाव्यञ्च

तच्च

श्री मांरेश्वरराव देशमुख विरचित
भाषाटीकया समलंकृतम्

प्रकाशक—

ठाकुरप्रसाद एण्ड सन्स

बुकसेलर,

राजादरवाजा, कचौड़ीगली, वाराणसी।

फोन ६४६५० —:— मूल्य २) रुपया

❀ श्रीकृष्णाय नमः ❀

श्री पं० जयदेवकविविरचितम्—

श्रीगीतगोविन्दम्

राधाविनोदकाव्यञ्च ।

तच्च

श्री मोरेश्वरराव देशमुख विरचित

भाषाटीकया समलंकृतम्

प्रकाशक—

ठाकुरप्रसाद ऐण्ड सन्स बुक्सेलर

राजादरवाजा, ब्रांच-कचौड़ीगली, वाराणसी ।

बम्बई प्रेस में छपा

मूल्य २)

मुद्रकः—
ठाकुर प्रसाद ऐण्ड सन्स बुक्सेलर
बम्बई प्रेस, राजादरवाजा, वाराणसी।

श्री राधाकृष्णाभ्यां नमः

अथ गीतगोविन्दम्

(सामोद दामोदरी)

प्रथमः सर्गः १

मेघैर्मेदुरमम्बरं वनभुवः श्यामास्तमालद्रुमै-
र्नक्तं भीरुरयं त्वमेव तदिमं राधे गृहं प्रापय ॥
इत्थं नन्दनिदेशतश्चलितयोः प्रत्यध्वकुञ्जद्रुमं
राधामाधवयोर्जयन्ति यमुनाकूले रहः केलयः ॥१॥

भगवान् श्रीकृष्ण तथा उनकी मित्रमण्डली व्रजराजके साथ वृन्दावन की मनोरम छटा देखते-देखते कुछ दूर निकल गई। सहसा गगन मण्डल मेघों से आच्छादित हो गया। उस समय तमाम वृक्षों की सघन पंक्तियों से वनस्थली काली-काली दिखाई देने लगी। नन्द ने सोचा:—सायंकाल होना ही चाहता है। जंगल का मामला है कृष्ण रात में भयभीत हो जाँयगे—इसलिये इन्हें पहले से ही घर पहुँचा देना ठीक होगा। उन्होंने कृष्ण के ऊपर अधिक स्नेह रखने वाली राधा से कहा—तुम जाओ और इन्हें भी साथ में ले जाकर घर पहुँचा देना। नन्द की आज्ञा मिलते ही राधा कृष्ण के साथ चलीं। कालिन्दी का

मुद्रकः—
ठाकुर प्रसाद ऐण्ड सन्स बुकसेलर
बम्बई प्रेस, राजादरवाजा, वाराणसी।

श्री राधाकृष्णाभ्यां नमः

अथ गीतगोविन्दम्

(सामोद दामोदरी)

प्रथमः सर्गः १

मेघैर्मेदुरमम्बरं वनभुवः श्यामास्तमालद्रुमै-
र्नक्तं भीरुरयं त्वमेव तदिमं राधे गृहं प्रापय ॥
इत्थं नन्दनिदेशतश्चलितयोः प्रत्यध्वकुञ्जद्रुमं
राधामाधवयोर्जयन्ति यमुनाकूले रहः केलयः ॥१॥

भगवान् श्रीकृष्ण तथा उनकी मित्रमण्डली व्रजराजके साथ वृन्दावन की मनोरम छटा देखते-देखते कुछ दूर निकल गई। सहसा गगन मण्डल मेघों से आच्छादित हो गया। उस समय तमाम वृक्षों की सघन पंक्तियों से वनस्थली काली-काली दिखाई देने लगी। नन्द ने सोचाः—सायंकाल होना ही चाहता है। जंगल का मामला है कृष्ण रात में भयभीत हो जाँयगे—इसलिये इन्हें पहले से ही घर पहुँचा देना ठीक होगा। उन्होंने कृष्ण के ऊपर अधिक स्नेह रखने वाली राधा से कहा—तुम जाओ और इन्हें भी साथ में ले जाकर घर पहुँचा देना। नन्द की आज्ञा मिलते ही राधा कृष्ण के साथ चलीं। कालिन्दी का

तट, सघन कुञ्जों से अलंकृत वनपथ तथा सुखदायी एकान्त इन सुविधाओं से परम प्रसन्न कौतुकी श्रीकृष्ण की प्रेममूर्ति राधा के साथ सम्पन्न क्रीड़ायें संसार में अपनी समता नहीं रखतीं ॥ १ ॥

वसन्ततिलकावृतम्

वाग्देवताचरितचित्रितचित्तसद्मा पद्मावतीचर-
णचारणचक्रवर्ती ॥ श्रीवासुदेवरतिकेलिकथासमेतमेतं
करोति जयदेवकविः प्रबन्धम् ॥ २ ॥

श्री सरस्वती की अद्भुत लीलाओं से अलंकृत हृदय तथा श्री राधा के चरण सेवकों में सर्वप्रधान श्रीजयदेव कवि, भगवान् श्रीकृष्ण चन्द्र की प्रेमलीलाओं से परिपूर्ण इस गीत गोविन्द नामक प्रबन्ध का निर्माण करते हैं ॥ २ ॥

द्रुतविलम्बितेन

यदि हरिस्मरणे सरसं मनो यदि विलासकलासु
कुतूहलम् ॥ मधुरकोमलकान्तपदावलिं शृणु तदा
जयदेवसरस्वतीम् ॥ ३ ॥

हे भक्तजनों ! यदि श्रीकृष्णचन्द्रजी का ध्यान करके अपना हृदय शीतल करना चाहो और वृन्दावनविहारी की रासलीला व कानन-क्रीड़ा सुनने की इच्छा करो तो जयदेव

कविराज विरचित गीतगोविन्द नामक पुस्तक का पाठ श्रवण करो ॥ ३ ॥

शार्दूलविक्रीडितेन

वाचः पल्लवयत्युमापतिधरः संदर्भशुद्धिं गिरां
जानीते जयदेव एव शरणः श्लाघ्यो दुरूहद्रुतेः ॥
शृङ्गारोत्तरसत्प्रमेयरचनैराचार्यगोवर्धन-
स्पर्द्धी कोऽपि न विश्रुतःश्रुतिधरो धोयीकविःक्ष्मापतिः

कवि उमापतिधरजी वाक्यविन्यास में श्रेष्ठ थे, शरण कवि दुरूह रचना में प्रसिद्ध थे, श्रीगोवर्धनाचार्य जी शृङ्गार रस पूर्ण कविता करने से मान को प्राप्त हुए थे, इसी भाँति धोयी कविराज को सुनने मात्र से ही याद हो जाता था किन्तु श्री जयदेव कविराज विशुद्ध रचना के लिये आदरणीय हैं ॥ ४ ॥

मालवरागे रूपकताले अष्टपदी ॥ १ ॥

प्रलयपयोधिजले धृतवानसि वेदम् ॥
विहितवहित्रचरित्रमखेदम् ॥
केशव धृतमीनशरीर जय जगदीशहरे ॥ ध्रुव०॥१

हे भगवन् ! प्रलयके समय आपने बिना परिश्रम समुद्रतरण के लिये नौका की तरह चेष्टित मीन रूप धारण करके वेदशास्त्र की रक्षा की थी । हे मीन रूपधारी भगवन् ! तुम्हारी जय हो, जय हो, जय हो ॥ १ ॥

क्षितिरतिविपुलतरे तव तिष्ठति पृष्ठे ॥
धरणिधरणकिणचक्रगरिष्ठे ॥
केशव धृतकच्छपरूप जय जगदीश हरे ॥ २ ॥

हे भगवन् ! आपने अपने अति विपुलतर पीठ पर पृथ्वी को धारण किया था, इसी कारण आपके पृष्ठ पर व्रण (घाव) का चिन्ह है, हे जगदीश ! आपकी जय हो जय हो जय हो ॥ २ ॥

वसति दशनशिखरे धरणी तव लग्ना ।
शशिनि कलंककलेव निमग्ना ॥
केशव ! धृतसूकररूप जय जगदीश हरे ॥ ३ ॥

हे केशव ! आपने सूकर रूप धारण करके प्रलय के जल से पृथ्वी का निज दाँतों से उद्धार किया । इसी कारण आपके दाँतों में ग्रस्त पृथ्वी कलंक रेखा के सदृश शोभायमान हो रहा है, हे जगदीश ! तुम्हारी जय हो जय हो जय हो ॥३॥

तव करकमलवरे नखमद्भुतशृङ्गम् ।
दलितहिरण्यकशिपुतनुभृङ्गम् ।
केशव ! धृत नरहरिरूप जय जगदीश हरे ॥ ४ ॥

हे केशव ! आपने नृसिंहरूप धारण कर श्रेष्ठ करकमल पर आश्चर्य पैदा करने वाले अद्भुत भृङ्गरूप नखों को धारण किया और उन्हीं नखों से दैत्यराज हिरण्यकशिपु का विनाश किया इस कारण हे भक्तवत्सल भगवन् ! तुम्हारी सदैव जय हो जय हो जय हो ॥ ४ ॥

छलयसि विक्रमणे बलिमद्भुतवामन ।
पदनखनीरजनितजनपावन ।
केशव ! धृत वामनरूप जय जगदीश हरे ॥ ५ ॥

हे केशव ! आपने वामन रूप धारण करके बलि को छला था और आपही ने अपने चरणकमलों से निकले हुए जल से समस्त लोगों को पवित्र किया था, हे भक्तजन रक्षक ! तुम्हारी जय हो जय हो जय हो ॥ ५ ॥

क्षत्रियरुधिरमये जगदपगतपापम् ।
स्नपयसि पयसि शमितभवतापम् ॥
केशव ! धृतभृगुपतिरूप जय जगदीश हरे ॥ ६ ॥

हे परशुरामरूप धारण करने वाले भगवन् ! आपने परशुराम रूप धारण कर कठोरात्मा क्षत्रियों का विनाश करके उन्हीं के रुधिर से पृथ्वी को तृप्त किया था, हे भगवन् ! हे जगदीश ! आपकी जय हो ३ ॥ ६ ॥

वितरसि दिक्षु रणे दिक्पतिकमनीयम् ।
दशमुखमौलिबलिं रमणीयम् ।
केशव धृतरामशरीर जय जगदीश हरे ॥ ७ ॥

हे भगवन् ! आपने समस्त लोगों पर दया करने के हेतु रामरूप धारण करके सभी देवताओं को प्रसन्न करने के लिये राक्षसराज रावण का संहार किया था, हे भगवन् ! तुम्हारी जय हो ३ ॥७॥

वहसि वपुषि विषदे वसनं जलदाभम् ।
हलहतिभीतिमिलितयमुनाभम् ॥
केशव ! धृतहलधररूप जय जगदीश हरे ॥ ८ ॥

हे भगवन् ! आपने हलधर रूप धारण करके मेघ सदृश नील वस्त्र धारण किया तब आपके शुभांग में वह नीलवसन हलभीता यमुना का स्वरूप शोभायमान हुआ था, हे जगदीश ! आपकी जय हो ३ ॥ ८ ॥

निन्दसि यज्ञविधेरहह श्रुतिजातम् ।
सदयहृदयदर्शितपशुघातम् ॥
केशव ! धृतबुद्धशरीर जय जगदीश हरे ॥ ९ ॥

हे भगवन् ! आपने ही जीवों पर दया करने के हेतु बुद्ध रूप धारण करके, पृथ्वी में जितने यज्ञ पशुहिंसाप्रधान हुआ करते थे उनकी निन्दा की, हे बुद्धरूपधारी भगवन ! आपकी जय हो जय हो जय हो ॥ ९ ॥

म्लेच्छनिवहनिधने कलयसि करवालम् ।
धूमकेतुमिव किमपि करालम् ॥
केशव ! धृतकल्किशरीर जय जगदीश हरे । १० ।

हे भगवन् ! आपने दुष्ट म्लेच्छों के नाश के हेतु धूमकेतु स्वरूप खड्ग धारण किया था । हे कल्किरूप भगवन् ! आपकी जय हो जय हो जय हो ॥ १० ॥

श्रीजयदेवकवेरिदमुदितमुदारम् ।
शृणु सुखदं शुभदं भवसारम् ॥
केशवधृतदशविधरूप जय जगदीश हरे ॥ ११ ॥

श्री जयदेवरचित यह स्तोत्र सब स्तोत्रों में श्रेष्ठ है। हे भक्तगण! इसको भक्ति भाव युक्त प्रीति पूर्वक आनन्द से श्रवण करो। हे दश अवतारों को धारण करने वाले भक्तजन दयालो! आपकी जय हो जय हो जय हो ॥ ११ ॥

इति श्रीगीतगोविन्दे प्रथमः प्रबन्धः ॥ १ ॥

वेदानुद्धरते जगन्ति वहते भूगोलमुद्बिभ्रते
दैत्यं दारयते बलिं छलयते क्षत्रक्षयं कुर्वते ।
पौलस्त्यं जयते हलं कलयते कारुण्यमातन्वते
म्लेच्छान् मूर्च्छयते दशाकृतिकृते कृष्णाय तुभ्यं नमः १

हे भगवन! आपने मीनरूप धारण कर प्रलय के जल से वेद शास्त्र की रक्षा की, कूर्मरूप धारण कर पृथ्वी को पीठ पर वहन किया, वाराहरूप धारण कर निज दन्तों से पृथ्वी को पानी में से उठाया, नृसिंह रूप धारण करके हिरण्यकशिपु का नाश किया, वामन रूप धारण कर बलिराज का छलन किया, परशुराम रूप धारण करके क्षत्रियों का नाश किया, राम रूप धारण करके रावण का हनन किया, हलायुध रूप धारण करके यमुना को खींचा, बुद्धरूप धारण करके अहिंसा धर्म को प्रकाशित किया और अब कल्कि रूप धारण करके महाभ्रष्ट

म्लेच्छ लोगों का विनाश करेंगे। अतः हे दशविधरूप धारण करने वाले! आपके चरण कमलों में मेरा नित्य प्रति साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम है ॥ १ ॥

गुर्जरागे प्रतिमंठताले अष्टपदी ॥ २ ॥

श्रितकमलाकुचमण्डल धृतकुण्डल ए।
कलितललितवनमाल जय जयदेव हरे ध्रु० ॥१॥

हे भगवन्! आप लक्ष्मी देवी के सुन्दर वक्षस्थल से क्रीडा करते हैं, आप कर्णभूषण से शोभायमान हैं आपके कण्ठ में वनमाला अत्यन्त सुशोभित हो रही है, हे कमलाकान्त! आपकी जय हो जय हो जय हो ॥ १ ॥

दिनमणिमण्डलमण्डन भवखण्डन ए।
मुनिजनमानहंस जय जय देव हरे ॥ २ ॥

हे नारायण! सूर्यमण्डल के भूषणस्वरूप समस्त लोगों को गति भक्ति और मुक्ति देने वाले आपही हो सन्त-भक्तजनों के हृदय में हंस सदृश विराजमान रहते हो। इससे हे भगवन् आपकी जय हो जय हो जय हो ॥ २ ॥

कालियविषधरगंजन जनरंजन ए।
यदुकुलनलिनदिनेश जय जय देव हरे ॥ ३ ॥

हे भगवन्! आपने कालिय नाग का दमन किया था और आप ही भक्तजनों की मनोकामना को परिपूर्ण करने वाले हैं।

यदुवंशरूप कमल के प्रकाशक सूर्य स्वरूप आपही हैं। हे यदुकुल प्रकाशक! आपकी जय हो ॥ ३ ॥

मधुमुरनरकविनाशन गरुडासन ए।
सुरकुलकेलिनिदान जय जय देव हरे ॥ ४ ॥

हे भगवन्! आपने मधु दैत्य और मुर नामक असुर का विनाश किया था, नरकस्थित पापियों को आप मुक्ति पद देते हैं। गरुड़ जिनके वाहन हैं ऐसे हे गरुड़ासन भगवन्! आपकी जय हो जय हो जय हो ॥ ४ ॥

अमलकमलदललोचन भवमोचन ए।
त्रिभुवनभवननिधान जय जय देव हरे ॥ ५ ॥

हे भगवन्! आपके नेत्र, कमल के समान हैं, भवपाश से छुड़ाने वाले आप ही हैं, हे नारायण! आपके असंख्य नाम हैं जिन नामों के उच्चारण मात्र से भक्तिप्रधान जीवों का हृदय शुद्ध होता है। हे भक्तिप्रद! आपकी जय हो जय हो जय हो॥५॥

जनकसुताकृतभूषण जितदूषण ए।
समरशमितदशकंठ जय जय देव हरे ॥ ६ ॥

हे भगवन्। आपने ही मिथिलेश नन्दिनी सीता का अङ्ग विभूषित किया था और आप ही ने निर्दय पापी दूषण और पाप-रूप लंकापति रावण का विध्वंस किया, हे परमपुरुष! आपकी जय हो जय हो जय हो ॥ ६ ॥

अभिनवजलधरसुन्दरधृतमन्दर ए ।
श्रीमुखचन्द्रचकोर जय जय देव हरे ॥ ७ ॥

हे भगवन ! आपका स्वरूप नूतन मेघ के तुल्य है। गोवर्धन पर्वत को कनिष्ठिका पर धारण करके व्रजपुरी की रक्षा आपने की । हे लक्ष्मी के मुखरूप चन्द्रमा के चकोर आपका नाम धन्य है, हे परमेश ! आपकी जय हो जय हो जय हो ॥ ७॥

तव चरणे प्रणता वयमिति भावय ए ।
कुरु कुशलं प्रणतेषु जय जय देव हरे ॥ ८ ॥

हे भगवन् ! हमलोग आपके चरणकमल में साष्टाङ्ग प्रणाम करते हैं । आप ही हम लोगों का मंगल करें, हे दीनदयाल ! आपकी जय हो जय हो जय हो ॥ ८ ॥

श्रीजयदेवकवेरिदं कुरुते मुदम् ।
मंगलमुज्ज्वलगीतं जय जय देव हरे ॥ ९ ॥

श्री कविवर जयदेव का यह उज्ज्वल गीत समस्त संसारी लोगों को मंगलप्रद है । अतः हे परब्रह्म ! आपकी जय हो जय हो जय हो ॥ ९ ॥

इति श्रीगीतगोविन्दे द्वितीयः प्रबन्धः ॥ २ ॥

—❀०❀—

पद्मापयोधरतटीपरिरम्भलग्न-
काश्मीरमुद्रितमुरो मधुसूदनस्य ॥

व्यक्तानुरागमिव खेलदनंगखेद-
स्वेदाम्बुपूरमनुपूरयतु प्रियं वः ॥ १ ॥

शृङ्गार रस में लग्न राधाजी के स्तनद्वय में लगे हुए केशर की शोभा से युक्त वृन्दावन बिहारीका हृदय आप लोगों का मंगल करे ॥ १ ॥

वसन्ते वासन्तीकुसुमसुकुमारैरवयवै-
र्भ्रमन्तीं कान्तारे बहुविहितकृष्णानुसरणाम् ।
अमन्दं कन्दर्पज्वरजनितचिन्ताकुलतया
चलद्बाधां राधां सरसमिदमूचे सहचरी ॥ २ ॥

वसन्त ऋतुमें कामदेव के उग्र बाणसे पीड़ित राधा श्रीकृष्ण-चन्द्र जी से मिलने के हेतु वासन्ती पुष्पों से परिपूर्ण वन के मध्य में भ्रमण करने लगीं । उस समय श्रीवृषभानु-नन्दिनी राधिका की कोई प्रिय सहेली उदासीन राधा को देख कर कहने लगी ॥ २ ॥

वसन्त रागे रूपकताले अष्टपदी ।

ललितलवंगलतापरिशीलनकोमलमलयसमीरे ।
मधुकरनिकरकरम्बितकोकिलकूजितकुञ्जकुटीरे ॥
विहरति हरिरिह सरसवसन्ते नृत्यति युवतिजनेन
समं सखि विरहिजनस्य दुरन्ते ॥ १ ॥ ध्रुव०

हे सखी ! यह मलयवत पवन लवंगलता के निकुञ्जवन को आलिंगित कर रहा है, भ्रमर और कोकिलादिक पक्षीगण अपनी - अपनी मधुर ध्वनि से क्या ही मन को आनन्द दे रहे हैं और स्वयं नारायण वसन्त ऋतु में नारियों के समूह से युक्त निकुञ्ज वन में अति सुन्दर नृत्य कर रहे हैं। हे सखी ! वसन्त ऋतु विरहीजनों को अत्यन्त दुःखदायी होता है ॥ १ ॥

उन्मदमदनमनोरथपथिकवधूजनजनितविलापे ।
अलिकुलसंकुलकुसुमसमूहनिराकुलबकुलकलापे ॥२॥

यह वही वसन्त है जिसमें काम की तीव्र अभिलाषाओं से पथिक—वधू उन्मत्त होकर विलाप किया करती हैं और बकुल के फूलों पर भ्रमर बैठते हैं जिससे बकुल वृक्ष ही झुक जाते हैं ॥ २ ।

मृगमदसौरभरभसवशंवदनवदलमालतमाले । युवजन-
हृदयविदारणमनसिजनखरुचिकिंशुकजाले ॥ ३ ॥

तमालवृक्षों के नवीन पल्लवों की कस्तूरी तुल्य सुगन्धि से निकुञ्ज वन व्याप्त है । यह निकुञ्ज पलाश के पुष्पों से चारों ओर सुवर्ण सदृश हो रहा है । इसे देखने से यही प्रतीत होता है कि कामदेव विरहीजनों के हृदयको विदीर्ण करने के लिये अपने नखों को विस्तृत कर रहा है ॥ २ ॥

मदनमहीपतिकनकदण्डरुचिकेसरकुसुमविकाशे ।
मिलितशिलीमुखपाटलपटलकृतस्मरतूणविलासे ॥४॥

कहीं कहीं नागकेसर लता फूल रही है उससे यह ज्ञात होता है कि कामदेव ने सिर पर सुवर्ण छत्र धारण किया है। किसी २ स्थान में पाटली के फूल फूल रहे हैं और उनपर मत्त भ्रमरगण गुंजार करते हैं इससे यह प्रतीत होता है कि मदन का तूण बाणों से भरा है ॥ ४ ॥

विगलितलज्जितजगदवलोकनतरुणकरुण-
कृतहासे ॥ विरहिनिकृन्तनकुन्तमुखाकृति
केतकिदन्तुरिताशे ॥ ५ ॥

हे सखी ! वसन्त ऋतु को देखकर समस्त संसार निर्लज्ज हो गया है इसी कारण से नवीन वरुण के वृक्ष फूलने के व्याज से उसकी हँसी कर रहे हैं देखिये तो सही यह केतकी के पुष्प भल्लाकार मुख धारण किये विरहीजनों के हृदय को भली भाँति वेधित करते हैं ॥ ५ ॥

माधविकापरिमलललिते नवमालिकयातिसुगन्धौ ।
मुनिमनसामपिमोहनकारिणि तरुणाकारणबन्धौ ।६।

यह वसन्त का समय माधवी (चमेली) और नवमल्लिका के पुष्पोंकी सुगन्धसे अत्यन्त ललित है इससे जितेन्द्रिय सत्यवादी सन्त जन भी मोहित हो जाते हैं। यह वसन्त इस समय युवक युवतियों का अकारण बन्धु है ॥ ६ ॥

स्फुरदतिमुक्तलतापरिरम्भणमुकुलितपुलकितचूते ।
वृन्दावनविपिने परिसरपरिगतयमुनाजलपूते ॥७॥

आम्रवृक्ष चमेली लता से आलिंगित होकर मुकुलित और आनन्द से पुलकित है। पास में बहनेवाली यमुना के जल से वृन्दावन पवित्र हो रहा है ॥ ७ ॥

श्रीजयदेवभणितमिदमुदयति हरिचरणस्मृतिसारम् ।
सरसवसन्तसमयवनवर्णनमनुगतमदनविकारम् ॥८॥

कविवर श्रीजयदेव स्वामी श्रीकृष्णचन्द्र के चरण कमल का अवलम्बन करके वृन्दावन के निकुञ्ज का वर्णन करते हैं और उसी के साथ वसन्त समय में गोपीगणों के हृदय में जो विरह पीड़ा हुई थी उसका भी वर्णन करते हैं ॥ ८ ॥

इति श्रीगीतगोविन्दे तृतीयः प्रबन्धः ॥ ३ ॥

दरविदलितमल्लीवल्लिचञ्चत्परागप्रकटितपटवा-
सैर्वासयन्काननानि ॥ इहहिदहति चेतः केतकीगन्ध-
बन्धुः प्रसरदसमबाणप्राणवद्गन्धवाहः ॥ १ ॥

हे राधे ! इस वसन्त के समय में कुछ खिली हुई चमेली की लताओं से उड़ती हुई पुष्पों की रजों से वन को सुगन्धित करता हुआ केतकी के गन्ध से सुगन्धित पवन कामदेव के प्राण के समान वियोगियों के चित्तको दग्ध करता है अर्थात् इस वसन्त समय में सुगन्धित वायु से विरहिजनों का चित्त

उन्मत्त हो रहा है, इस कारण हे वृषभानु नन्दिनि ! ऐसे समय आपका गमन उचित है ॥ १ ॥

उन्मीलन्मधुगन्धलुब्धमधुपव्याधूतचूताङ्कुर-
क्रीडत्कोकिलकाकलीकलकलैरुद्गीर्णकर्णज्वराः ॥
नीयन्ते पथिकैः कथं कथमपि ध्यानावधानक्षण-
प्राप्तप्राणसमासमागमरसोल्लासैरमी वासराः ॥२॥

हे सखि ! जितनाही आम्रमुकुल का गन्ध विस्तारित होता है उतनाही मधुगंधलुब्ध भ्रमर उनको कम्पायमान करते हैं वैसेही पवनसे झकोरको प्राप्त आम्रवृक्षों के सिरपर बैठकर कोकिलाएँ कुहू-कुहू शब्दसे विरही पथिकों के कानों में विशेष पीड़ा देती हैं। हाय ! ऐसे पथिक (मार्ग चलनेवाले) आज अपनी प्राण-प्रिया का चिंतन करते समय बिताते हैं, और चिंता के कारण काल्पनिक क्षणिक सुख को प्राप्त होकर पश्चात् अत्यन्त क्लेश से दिन व्यतीत करते हैं ॥ २ ॥

अनेकनारीपरिरम्भसम्भ्रमस्फुरन्मनोहारिविलासला-
लसम् ॥ मुरारिमारादुपदर्शयन्त्यसौ सखी समक्षं
पुनराह राधिकाम् ॥ ३ ॥

अनेक स्त्रियोंके आलिंगनके आदरसे मनोहर विलासमें प्रगट लालसा वाले श्रीकृष्णचन्द्रजी को दूर से प्रत्यक्ष दिखाती हुई सखी पुनः राधिकाजी के प्रति बोली ॥ ३ ॥

रामकलिरागे रूपकताले अष्टपदी ॥ ४ ॥

चन्दनचर्चितनीलकलेवरपीतवसनवनमाली । केलि-
चलन्मणिकुण्डलमण्डितगण्डयुगस्मितशाली। हरिरिह
मुग्धवधूनिकरे विलासिनि विलसति केलिपरे ॥ध्रु०॥

हे कृष्णविलासिनि राधे! श्रीकृष्णचन्द्रजी ने चन्दन का अपने नील अंगों में लेपन किया है और पीताम्बरने उन अंगों को सुशोभित किया है, कंठमें सुन्दर बनमाला धारण की है, श्रीकृष्णजी के कपोल, हँसी सहित कामविलासके कारण अत्यन्त शोभा को प्राप्त हो रहे हैं और उनके कुण्डलों के हिलनेसे मुखकी शोभा अपूर्व हो रही है। इस भाँति श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द इसी बन में व्रजबालाओं के साथ क्रीड़ा में तत्पर हैं ॥ १ ॥

पीनपयोधरभारभरेण हरिं परिरभ्य सरागम् । गोप-
वधूरनुगायति काचिदुदंचितपञ्चमरागम् । हरिरिह २

हे राधे! कोई २ उन्नतस्तनी गोपवधू प्रेम से उन्मत्त होकर कृष्णजी को आलिंगन करके पंचम राग में गीत गाती है।

कापि विलासविलोल विलोचनखेलनजनितमनोजम्
ध्यायति मुग्धवधूरधिकं मधुसूदनवदनसरोजम्
हरि० ॥ ३ ॥

श्री कृष्णजी के भ्रूभंग से मोहित होकर कोई २ गोपकामिनी उनके मदनविकासित मुखकमल का ध्यान करके बहुत ही आनन्द को प्राप्त होती है ॥ ३ ॥

कापि कपोलतले मिलितालपितुं किमपि श्रुतिमूले ।
चारु चुचुम्ब नितम्बवती दयितं पुलकैरनुकूले
हरिरिह० ॥ ४ ॥

किसी २ गोपांगनाने गुप्तवार्ताके कहने के बहाने श्रीकृष्ण जीके कर्ण के समीप अपने मुखको ले जाकर चातुरीपूर्ण ढंग से कृष्ण के मुखकमल का आनन्द पूर्वक चुम्बन कर लिया ॥४॥

केलिकलाकुतुकेन च काचिदमुं यमुनाजलकूले ॥
मञ्जुलवञ्जुलकुञ्जगतं विचकर्ष करेण दुकूले
हरिरिह० ॥ ५ ॥

कोई गोपी क्रीडा की इच्छासे यमुनाजल के तटपर बेतों के कुञ्जमें विहार करते हुए श्रीकृष्णचन्द्रजी का दुपट्टा हाथ से पकड़ कर खींचने लगी अर्थात् श्रीकृष्णचन्द्रजी के संग काम-केलि के आनन्द को भोगनेको उसने इच्छा प्रकटकी ॥५॥

करतलतालतरलवलयावलिकलितकलस्वनवंशे ।
रासरसे सह नृत्यपरा हरिणा युवति प्रशशंसे ॥
हरिरिह० ॥ ६ ॥

किसी रमणी ने श्रीकृष्ण के साथ नाचते हुए करतल के साथ कंगन की ध्वनि भी उनकी वंशीके ध्वनिके साथ मिला दी, इस ध्वनि को सुनकर श्रीकृष्णचन्द्रजी ने उस रमणी की अत्यन्त ही प्रशसा की ॥ ६ ॥

श्लिष्यति कामपि चुम्बति कामपि कामपि रमयति रामाम् ॥ पश्यति सस्मितचारु परामपरा-मनुगच्छति वामाम् ॥ हरिरिह० ॥ ७ ॥

श्रीकृष्णचन्द्रजी महाराज किसी गोपीका आलिंगन करते हैं, किसीके मुख का चुम्बन करते हैं, किसी गोपी के संग काम क्रीड़ा करते हैं और किसी को हँसकर मनोहर दृष्टि से देखते हैं और किसी २ गोपी के संग पीछे पीछे भी चलते हैं ॥ ७ ॥

श्रीजयदेवकवेरिदमद्भुतकेशवकलितरहस्यम् ।
वृन्दावनविपिने ललितं वितनोतु शुभानि यशस्यम् ॥
हरिरिह० ॥ ८ ॥

अनेक रसों से परिपूर्ण, केशव क्रीड़ा का रहस्य, गोपियों को आनन्द प्रद, जयदेव कविकृत यह गीत भक्तों को मंगल दे।

इति श्रीगीतगोविन्दे चतुर्थः प्रबन्धः ॥ ४ ॥

विश्वेषामनुरंजनेन जनयन्नानन्दमिन्दीवरश्रेणीश्यामलकोमलरुपनयन्नंगैरनंगोत्सवम् । स्वच्छन्दं व्रजसुन्दरीभिरभितः प्रत्यंगमालिङ्गितः शृङ्गारः सखि मूर्तिमानिव मधौ मुग्धो हरिः क्रीडति ॥ १ ॥

हे राधे ! व्रजकामिनियों के स्वच्छन्द आलिङ्गन से संसार को आनन्दित करते हुए श्रीकृष्णचन्द्रजी आपही शृङ्गाररस स्वरूप हो जाते हैं और वसन्त ऋतु में सर्वत्र व्रज नारियों की इच्छा पूर्ण करते हैं। भगवान् के नील कमल के समान कोमल अंगों के भोग का अनुभव करके समस्त व्रज नारियाँ क्रीडा कौतुक में मग्न हो जाती हैं ॥ १ ॥

अद्योत्सङ्गवसद्भुजङ्गकवलक्लेशादिवेशाचलत्प्रालेयप्लवनेच्छयानुसरति श्रीखण्डशैलानिलः ॥ किंचित्स्निग्धरसालमौलिकुसुमान्यालोक्य हर्षोदयादुन्मीलन्ति कुहूः कुहूरिति मुहुस्ताराः पिकानां गिरः ॥२॥

हे राधे ! आज वसन्त के समय निज स्थानस्थित सर्पों के त्रास भय से यह मलयाचल का पर्वत हिम में डूबने की इच्छा से हिमालय की ओर गमन करता है और आम्र के कोमल पत्तों को देखकर कोयलों का कुहू - कुहू शब्द आनन्द पूर्वक ऊँचे स्वर से निकल रहा है ॥ २ ॥

रासोल्लासभरेण विभ्रमभृतामाभीरवामभ्रुवामभ्यर्णं परिरभ्य निर्भरमुरःप्रेमान्धया राधया ॥ साधु त्वद्वदनं सुधामयमिति व्याहृत्य गीतस्तुतिव्याजादुद्भट-चुम्बितः स्मितमनोहारी हरिः पातु वः ॥ ३ ॥

इति श्रीगीतगोविन्दभाषाटीकायां सामोददामोदरोनाम प्रथमः सर्गः

रासक्रीडा से प्रसन्न गोपियों के सामने श्री राधा ने श्री-कृष्णजी से कहा कि हे भगवन् ! आपका मुखकमल अमृत पूर्ण है यह कह कर राधाजी ने उनके बदन का चुम्बन कर लिया, चुम्बन जनित हास्य रेखा से अलंकृत श्रीकृष्णचन्द्रजी का वह मुख कमल सर्व जीवों का मङ्गल करे ॥ ३ ॥

इति श्रीगीतगोविन्दे सामोददामोदरो नाम प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

---o---

अथ द्वितीयः सर्गः

प्रबोध। केशव

विहरति वने राधा साधारणप्रणये हरौ।
विगलितनिजोत्कर्षादीर्ष्यावशेन गतान्यतः॥
क्वचिदपि लताकुञ्जे गुञ्जन्मधुव्रतमण्डली
मुखरशिखरे लीना दीनाप्युवाच रहः सखीम् १

श्रीकृष्णचन्द्रजी के प्रेम में उन्मत्त राधाने और स्त्रियोंके साथ क्रीडाकौतुक में लगे हुए उन्हें देख अपने हृदय में ईर्ष्या करके मधुपानमत्त भ्रमर गणों से सेवित लता कुञ्ज के पीछे छिपकर निज सखी से अत्यन्त खेद युक्त होकर यों कहना आरम्भ किया।

गुर्जररागे रूपकताले अष्टपदी ॥ ५ ॥

संचरदधरसुधामधुरध्वनिमुखरितमोहनवंशम् ॥
चलितदृगंचलचंचलमौलिकपोलविलोलवतंसम् ॥
रासे हरिमिह विहितविलासं स्मरति मनो मम
कृतपरिहासम् ॥ ध्रु० ॥ १ ॥

हे प्रिये! श्रीकृष्णचन्द्रजी की मनो मोहिनी छवि मेरी आँखों में तथा हृदय में बसी है। अधरामृत के सञ्चार से मीठी ध्वनि से

अलंकृत वन्शी को जिस समय वे बजाते हैं और तिरछी आँखों से देखने वाले चञ्चल मुकुट तथा किरीट को धारण किये हुये जिस समय वे मधुर परिहास करने लगते हैं उस समय की उनकी छटा का मुझे बारबार स्मरण होता है ॥ १ ॥

चन्द्रकचारुमयूरशिखण्डकमण्डलवलयितकेशम् ।
प्रचुरपुरन्दर धनुरनुरञ्जितमेदुरमुदिरसुवेशम् । रासे०।२

श्रीकृष्णचन्द्र के केश मयूरपुच्छ के सदृश शोभायमा। हो रहे हैं और उनकी कान्ति इन्द्रधनुष के समान शोभित हो रही है ॥ २ ॥

गोपकदम्बनितम्बवतीमुखचुम्बनलम्बितलोभम् ।
बन्धुजीवमधुराधरपल्लवमुल्लसितस्मितशोभम् । रासे०

हे सखि ! श्रीकृष्ण ने नितम्बवती गोपबालाओं के मुख कमलों का चुम्बन करने के लिये लोभ किया है और जिनके अधर पल्लव बन्धुजीव के समान मधुर हैं—हँसीसे जिनकी शोभा उल्लसित हो रही है ऐसे श्रीकृष्ण को मेरा मन स्मरण करता है ॥ ३ ॥

विपुलपुलकभुजपल्लववलयितवल्लवयुवतिसहस्रम् ॥
करचरणोरसिमणिगणभूषणकिरणविभिन्नतमिस्रम् ॥

जिन हरिने नवीन पल्लवस्वरूप कोमल हाथों से हजारों गोप-कामिनियों को अलंकृत किया है, जिन हरिके हाथों और चरणों के भूषणों से समस्त अन्धकार नाश होता है ऐसे श्रीकृष्ण चन्द्र जी को मेरा मन स्मरण करता है ॥ ४ ॥

जलदपटलचलदिन्दुविनिन्दकचन्दनतिलकललाटम् ।
पीनपयोधरपरिसरमर्दननिर्दयहृदयकपाटम् ॥ रासे० ॥

हे सखि ! जिनके ललाटमें लगा चन्दन मेघों के समूह में चञ्चल चन्द्रमा की निन्दा करता है और गोपियों के पुष्ट स्तनों के प्रान्तभाग के मर्दन करने में जिनका वक्षस्थल दबता नहीं है ऐसे श्रीकृष्णचन्द्रजी को मेरा मन स्मरण करता है ॥ ५ ॥

मणिमयमकरमनोहरकुण्डलमण्डितगण्डमुदारम् ।
पीतवसनमनुगतमुनिमनुजसुरासुरवरपरिवारम् ॥

हे सखि ! जिन हरिके गण्डदेश में अत्यन्त सुन्दर मणियों के कुण्डलाभूषण शोभायमान हो रहे हैं और जिनके चरण कमल की सेवा ऋषि, मनुष्य, देवता असुरादि सभी करते हैं, जिन हरिने अपने सुन्दर पीताम्बर से अद्भुत कोमल अङ्गों को शोभित किया है ऐसे श्रीकृष्णचन्द्रजी को मेरा मन स्मरण करता है ॥ ६ ॥

विशदकदम्बतले मिलितं कलिकलुषभयं शमयन्तम् ।
मामपि किमपि तरंगदनंगदृशा मनसा रमयन्तम् ॥
रासे० ॥ ७ ॥

हे सखि ! अत्यन्त सुन्दर कदम्ब के नीचे मिलनेवाले कलिकाल में उत्पन्न हुए पाप भयके नाशक तथा कामक्रीडा को बढ़ानेवाली दृष्टि से देखने वाले और हृदय से मेरे साथ रमण करनेवाले श्रीकृष्णचन्द्र को मेरा मन स्मरण करता है ॥ ७ ॥

श्रीजयदेवभणितमतिसुन्दरमोहनमधुरिपुरूपम् ।
हरिचरणस्मरणं प्रति संप्रति पुण्यवतामनुरूपम् ॥
रासे० ॥ ८ ॥

श्री जयदेव कवि रचित अतिसुन्दर श्रीकृष्णचन्द्र के रूपका वर्णन इस कलिकाल में भक्तों को हरिचरणों के स्मरण के लिए उपयुक्त होवे ॥ ८ ॥

इति श्रीगीतगोविन्दे पञ्चमः प्रबन्धः ॥ ५ ॥

गणयति गुणग्रामं भ्रामं भ्रमादपि नेहते। वहति च परितोषं दोषं विमुञ्चति दूरतः॥ युवतिषु चलत्तृष्णे कृष्णे विहारिणि मां विना! पुनरपि मनो वामं कामं करोति करोमि किम् ॥ १ ॥

श्रीवृषभानु नन्दिनी राधाके यह वचन सुनकर सखियाँ राधाजी से कहने लगीं—हे राधे ! श्रीकृष्णजी जब तुम्हें छोड़ अन्य व्रजनारियों के साथ क्रीड़ा व्यवहार करते हैं तो तुम क्यों चिढ़ती हो ? यह सुन राधा ने कहा कि हे सखि ! चाहे कृष्णजी मुझे छोड़ अन्य गोपियों के साथ क्रीड़ा में भलेही आसक्त होवें परन्तु मेरा मन तो उनपर लग गया है। उनके दोष करने पर भी उन्हें छोड़ना नहीं चाहती और उनके ध्यान से मेरा मन प्रसन्न होता है, कहो मैं इस विषय में क्या करूँ ॥ १ ॥

मालवरागे एकताली ताले अष्टपदी ॥ ६ ॥

निभृतनिकुञ्जगृह गतया निशि रहसि निलीय वसन्तम् ॥ चकितविलोकितसकलदिशारतिरभसभरेण हसन्तम् ॥ सखि हे केशिमथनमुदारम् ॥ रमय मया सह मदनमनोरथभावितया सविकारम् ॥ध्रु०॥१॥
प्रथमसमागमलज्जितया पटु चाटुशतैरनुकूलम् ॥ मृदुमधुरस्मितभाषितया शिथिलीकृतजघनदुकूलम् ॥ सखि हे० ॥ २ ॥

हे सखि ! शान्त लतागृह में आई हुई मेरे साथ रात को एकान्त में क्रीड़ा करने वाले, चकित होकर इधर-उधर देखने पर कौतुक

से भरी हंसी हँसने वाले, केशि दैत्य के मारने वाले श्रीकृष्ण के साथ कामभावासक्त मुझे तुम मिला दो ॥ १ ॥

हे सखि । प्रथम समागम की लज्जा से युक्त मेरे साथ कोमल मधुर हँसी सहित भाषण करने वाले श्रीकृष्णचन्द्र अनेक भाँति मेरी विनती करेंगे । उस समय मेरी लज्जा दूर हो जावेगी तब श्रीकृष्ण आपही मेरे जाँघ पर की साड़ी हटावेंगे । हे सखि ! ऐसे उन श्रीकृष्णजी से तुम हमें मिला दो ॥ २ ॥

किसलयशयननिवेशितया चिरमुरसि ममैव शयानम् ।
कृतपरिरम्भणचुम्बनया परिरम्भ कृताधरपानम् ॥
सखि हे० ॥ ३ ॥

हे सखि ! मैं कुञ्जकुटीर के मध्य कोमल पत्तो की शय्या बनाकर शयन करूँगी तब श्यामसुन्दर श्रीकृष्ण मेरे साथ विराजमान होकर मेरेही वक्षस्थल पर चिरकाल तक शयन करते हुए आलिङ्गन कर मेरा अधरामृत पान करेंगे ऐसे श्रीकृष्णचन्द्र जी से तुम हमें मिला दो ॥ ३ ॥

अलसनिमीलितलोचनया पुलकावलिललितकपोलम् ।
श्रमजलसिक्तकलेवरया वरमदनमदादतिलोलम् ॥
सखि हे० ॥ ४ ॥

हे सखि ! इस प्रकार कामभोग के समय मदासक्ति से श्रीकृष्ण के दोनों ही नेत्र अधखुले ही रहेंगे और उनके दोनों ही कपोल पुलकित होकर अत्यन्त सुन्दर स्वरूप धारण करेंगे ! मेरे बदन पर पसीने की बूँदों को देखकर वह श्रीकृष्ण मुझे ही बार बार चञ्चल नेत्रों से देखेंगे, हे सखि ! ऐसे श्रीकृष्णजी से मुझे मिला दो ॥ ४ ॥

कोकिलकलरवकूजितया जितमनसिजतन्त्रविचारम् ।
श्लथकुसुमाकुलकुन्तलया नखलिखितघनस्तनभारम् ॥
सखि हे० ॥ ५ ॥

हे सखि ! कोकिल के समान शब्द करने वाली, रति के समय ढीले-ढीले फूलों से गुथे हुए अलकों वाली मेरे साथ, कामदेव को मात करने वाले और स्तनों पर नखक्षत करने वाले श्रीकृष्णचन्द जी को मुझसे मिला दो ॥ ५ ॥

चरणरणितमणिनूपुरया परिपूरितसुरतवितानम् ।
मुखरविशृङ्खलमेखलया सकचग्रहचुम्बनदानम् ॥
सखि हे० ॥ ६ ॥

हे सखि ! मणिजटित नूपुरों के शब्द वाली और ढीली हो गई है मेखला [कमर बन्धन नारा] जिनकी ऐसी मेरे संग

परिपूर्ण किया है रति क्रीड़ा का सुख जिन्होंने तथा मेरे केशों को पकड़ कर किया है मुखचुम्बन जिनने ऐसे श्रीकृष्णचन्द्रजी को मुझसे मिला दो ॥ ६ ॥

रतिसुखसमयरसालसया दरमुकुलितनयनसरोजम् ॥
निःसहनिपतिततनुलतया मधुसूदनमुदितमनोजम् ॥
सखि हे० ॥ ७ ॥

हे सखि ! रतिक्रीड़ा में आसक्त होने से मेरे अङ्गों में शिथिलता अवश्य आयेगी और श्रीकृष्णजी के कमल नेत्र भी अनंगराग से निश्चय ही मुदित होवेंगे। श्यामसुन्दर मेरी यह दशा देखकर उस समय मुझपर अत्यन्त आसक्त हो जायेंगे ऐसे श्रीकृष्णचन्द्रजी को मुझसे अवश्य मिला दो ॥ ७ ॥

श्रीजयदेव भणितमिदमतिशयमधुरिपुनिधुवनशीलम् ।
सुखमुत्कण्ठितगोपवधूकथितं वितनोतु सलीलम् ॥
सखि हे० ॥ ८ ॥

जयदेव कविरचित श्रीकृष्णचन्द्रजी के चरित्रसे युक्त, गीतिपूर्वक राधा जी द्वारा कही हुई शृङ्गाररस का यह लीला पढ़ने और सुननेवालों को इस लोक और परलोक में सुखद हो ॥८॥

इति श्रीगीतगोविन्दे षष्ठः प्रबन्धः ।

हस्तस्रस्तविलासवंशमनृजुभ्रूवल्लिमद्बल्लवी-
वृन्दोत्सारिदृगन्तवीक्षितमतिस्वेदार्द्रगण्डस्थलम् ॥
मामुद्वीक्ष्य विलज्जितस्मितसुधामुग्धाननं कानने ।
गोविन्दं व्रजसुन्दरीगणवृतं पश्यामि हृष्यामि च ॥१॥

हे सखि! जो हरि व्रजबालाओं से घिरे हुए हैं और समस्त बालायें छिपे हुए भाव से जिन हरिकी ओर कटाक्ष युक्त दृष्टिपात करती हैं, मुझे देखकर जिन कृष्णकी बंशी गिर जाती है, कृष्ण की हँसी कन्दर्पराग से परिपूर्ण हो जाती है, जिनके कपोल पसीने से गीले हो रहे हैं इस भाँति बनमें केलि करते हुए उन कन्हैयाको देखकर मेरे मनमें अत्यन्त आनन्द प्राप्त होता है ॥ १ ॥

दुरालोकस्तोकस्तबकनवकाशोकलतिका ।
विकाशः कासारोपवनपवनोऽपि व्यथयति ॥
अभिभ्राम्यद्भृङ्गी रणितरमणीयानमुकुल-
प्रसूतिश्चूतानां सखि शिखरिणीयं सुखयति ॥ २ ॥

हे सखि! मैं अपने दुखकी कहानी क्या कहूँ यह नवीन अशोक की लता का फूलना, यह सरोवर का शीतल वायु, मुझे बड़ाही दुख देता है हे मेरी प्यारी! यह भ्रमर का राग आम्र की सुन्दर कलियाँ भी मुझे सुख नहीं देती हैं ॥ २ ॥

साकूतस्मितमाकुलाकुलगलद्धम्मिल्लमुल्लासित-
भ्रूवल्लीकमलीकदर्शितभुजामूलार्धदृष्टस्तनम् ।
गोपीनां निभृतं निरीक्ष्य दयितं काञ्चिच्चिरं चिन्तय-
न्नंतर्मुग्धमनोहरो हरतु वः क्लेशं नवः केशवः ॥३॥

इति श्रीगीतगोविन्दे अक्लेशकेशवो नाम
द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

समस्त गोपियों के हाव भाव कटाक्ष युक्त मुखों को और कामवश से छूटी हुई वेणी, आनन्द पूर्वक भृकुटियों को, कटाक्ष एवं स्तनों को देखकर कन्हैयाजी सब कामिनियों में से राधाजी को श्रेष्ठ अनुमान करके बहुत देर तक उनके सौन्दर्य का ध्यान करने लगे। ऐसे मधुर तथा चित्त चोर राधाजी के प्रियतम आनन्दकन्द कृष्णचन्द्र तुम्हें मंगल दें ॥ ३ ॥

इति श्री गीतगोविन्दे महाकाव्ये भाषाटीकायां द्वितीयः सर्गः ।

—❀○❀—

तृतीयः सर्गः

मुग्ध मधुसूदनः

कंसारिरपि संसारवासनाबंधश्रृङ्खलाम् ।
राधामाधाय हृदये तत्याज व्रजसुन्दरीः ॥ १ ॥

श्रीकृष्णचन्द्रजी ने सांसारिक बासना को बाँधने की श्रृङ्खला राधाजी को मनमें स्थिर करके अन्य व्रज सुन्दरियोंको त्याग कर दिया ॥ १ ॥

इतस्ततस्तामनुसृत्य राधिकामनंगबाणव्रणखिन्नमानसः । कृतानुतापः स कलिन्दनन्दिनीतटान्तकुञ्जे निषसाद माधवः ॥ २ ॥

कामदेव के बाणों से लग गये हैं घाव जिनको, दीन है मन जिनका, किया है अनेक भाँति से पश्चात्ताप जिन्होंने ऐसे वह कृष्ण इधर-उधर वृषभानुनन्दिनी राधिका को ढूँढ़कर यमुना के किनारे समीपस्थ कुञ्ज में बैठ गये ॥ २ ॥

गुर्जररागे प्रतिमण्ठताले अष्टपदी ॥ ७ ॥

मामियं चलिता विलोक्य वृतं वधूनिचयेन ।

सापराधतया मयापि न वारितातिभयेन ।
हरिहरि हतादरतया गता सा कुपितेव ॥ ध्रु० ॥१॥

गोपियों के वृन्द से घिरा हुआ मुझे देखकर राधाजी यहाँ से चली गईं और जाते समय मैंने मना भी नहीं किया जिससे नष्ट हुआ है मान जिसका ऐसी वह राधा कोप करके यहाँ से चली गई है । अहो ! यह मैंने बड़ाही अपराध किया ॥ १ ॥

किं करिष्यति किं वदिष्यति सा चिरं विरहेण ।
किं जनेन धनेन किं मम जीवितेन गृहेण ॥हरि०॥२॥

और मेरे बहुत काल के विरह से सन्तप्त वह राधा अपने विरह शान्ति के लिए क्या उपाय करेगी और क्या कहेगी ? मुझे इन अन्य गोपीजनों से क्या प्रयोजन है ? जिसके वियोग में मैंने सभी को त्याग दिया है । इस समय धन से, घर से, सुख से मुझे कोई प्रयोजन नहीं है यह सब निष्फल है ॥ २ ॥

चिन्तयामि तदाननं कुटिलभ्रूरोषभरेण ।
शोणपद्ममिवोपरि भ्रमता कुलं भ्रमरेण ॥हरि०॥३॥

क्रोध की अधिकता से कुटिल हैं भृकुटियाँ जिसकी भ्रमरों से युक्त रक्त कमल के समान मुख है जिस राधा का ऐसे मुखारविन्द का मैं स्मरण करता हूँ ॥ ३ ॥

तामहं हृदि संगतामनिशं भृशं रमयामि ॥
किं वनेऽनुसरामि तामिह किं वृथा विलपामि॥हरि०।४।

यह विलाप करते हुए हरिने कहा कि हे राधे ! तेरी मनोहर मूर्ति मेरे हृदय कमल में सदैव स्थित रहती है और उसी मूर्ति का मैं निरन्तर पूजन किया करता हूँ । इस अखण्ड वन में तुझे ढूँढने से मुझे दुःख मिल रहा है । विलापादि करना भी व्यर्थ ही है ॥ ४ ॥

तन्वि खिन्नमसूयया हृदयं तवाकलयामि ॥
तन्न वेद्मि कुतो गतासि न तेन तेऽनुनयामि ॥
हरि० ॥ ५ ॥

हे तन्वि ! कोमलाङ्गि राधे ! मैं आपके हृदय को दुःखी जानता हूँ परन्तु यह नहीं जानता कि तू यहां से कहाँ चली गई है इसी से तुझे प्रसन्न करने में मैं असमर्थ हूँ ॥ ५ ॥

दृश्यसे पुरतो गतागतमेव मे विदधासि ॥
किं पुरेव ससंभ्रमं परिरंभणं न ददासि ।। हरि०॥६॥

हे वृषभानुनन्दिनि ! यदि तू मुझे दिखाई देती है तो फिर पहिले की भाँति मेरे पास आकर वेगसे क्यों नहीं आलिङ्गन करती । (विरही पुरुष सर्वत्र निज प्रियाही को देखा करते हैं) ॥ ६ ॥

क्षम्यतामपरं कदापि तवेदृशं न करोमि ॥
देहि सुन्दरि दर्शनं मम मन्मथेन दुनोमि । हरि०॥७॥

हे सुन्दरि ! मेरे किये हुए पिछले अपराधों को क्षमा करो अब मुझसे आपका कोई अपराध न होगा मुझे दर्शन दो मैं कामसे पीड़ित हूँ ॥ ७ ॥

वर्णितं जयदेवकेन हरेरिदं प्रणतेन ॥
किन्दुबिल्वसमुद्रसंभवरोहिणीरमणेन ॥ हरि० ॥८॥

किन्दुबिल्वरूपी समुद्रमें चन्द्रमा के तुल्य भक्तिप्रधान जयदेव स्वामी रचित श्रीकृष्णजी के परितापका वर्णन सदैव भक्तजनों की तृप्ति करने वाला हो ॥ ८ ॥

इति श्रीगीतगोविन्दे सप्तमः प्रबन्धः ॥ ७ ॥

भ्रूपल्लवं धनुरपांगतरंगितानि बाणा गुणाः श्रवणपालिरिति स्मरेण ॥ तस्यामनंगजयजंगमदेवतायामस्त्राणि निर्जितजगन्ति किमर्पितानि ॥ १ ॥

समस्त संसार को जीतने के बाद अपने विजयी अस्त्रों को कामदेव ने अपनी साक्षात् विजय देवता राधा जी में रख दिया है । श्रीकृष्णचन्द्र कहते हैं कि सचमुच राधा की भौंहें ही

धनुष, कटाक्ष की परम्परा ही बाण तथा कर्ण देश ही प्रत्यञ्चा है ॥ १ ॥

हृदि बिसलताहारो नायं भुजङ्गमनायकः
कुवलयदलश्रेणी कण्ठे न सा गरलद्युतिः ॥
मलयजरजो नेदं भस्म प्रियारहिते मयि
प्रहर न हर भ्रांत्यानङ्ग क्रुधा किमु धावसि ॥ २ ॥

इतने पर कृष्णचन्द्र कहते हैं कि ऐ कामदेव तू मुझे शंकर समझ कर बदला लेने के लिए क्रोध पूर्वक क्यों दौड़ रहा है। मेरे हृदय पर शान्ति के लिए रक्खे हुये मृणाल को सर्प न समझ, मेरे गले में ठंडक के लिये पड़ी नील कमल की पंक्ति को विष का चिन्ह मत समझ। मैं इस समय विर.ी हूँ। विरह संताप की शांति के लिये लगे हुये चन्दन को शंकर की विभूति न जान ॥ २ ॥

पाणौ मा कुरु चूतसायकममुं मा चापमारोपय
क्रीडानिर्जितविश्वमूर्छितजनाघातेन किं पौरुषम् ॥
तस्या एव मृगीदृशो मनसिज प्रेक्षत्कटाक्षानल-
ज्वालाजर्जरितं मनागपि मनो नाद्यापि संधुक्षते ।३।

हे क्रीड़ा से ही समस्त संसार को जीतने वाले ! इस आम्र

पुष्प रूपी बाणको हाथमें लेकर धनुष पर मत चढ़ाओ क्योंकि मूर्छा को प्राप्त हुये मेरे सदृश जनकी पीड़ा से तेरा क्या पुरुषार्थ होगा? कुछ भी नहीं। कारण कि उस मृगनयनी राधाजीके चलाये हुए कटाक्षरूपी बाणों की ज्वाला से टुकड़े २ हुआ मेरा मन अब तक कुछ भी जीवन को नहीं धारण करता इसलिये असावधान पर प्रहार करना धर्म से विरुद्ध है ॥ ३ ॥

भ्रूचापे निहितः कटाक्षविशिखो निर्मातु मर्मव्यथां
श्यामात्मा कुटिलः करोतु कबरीभारोऽपि मारोद्यमम्।
मोहं तावदयं च तन्वि ! तनुतां बिंबधरो रागवान्
सद्वृत्तस्तनमंडलं तव कथं प्राणैर्मम क्रीडति ॥ ४ ॥

श्रीकृष्णचन्द्र निज मन में स्थित राधा के प्रति अपना दुःख बयान करते हैं। हे राधे भृकुटीरूप धनुष पर चढ़ा हुआ कटाक्षरूपी बाण मेरे मन को भेदन करे तो अच्छा है। श्यामवर्ण कुटिल केशों का समूह भी कामदेव को बढ़ावे तो बढ़ावे कारण कि जो भीतर से कुटिल हैं वे दूसरे को मारने का अवश्य ही यत्न करते हैं। यह राग पूर्ण रक्तवर्ण बिम्बाधर अधरोष्ठ मेरे राग का विस्तार करे तो करे कारण कि रागवाला मोह को उत्पन्न करता ही है, परन्तु यह गोल तेरे दोनों स्तनों के मण्डल मेरे प्राणों के साथ क्यों क्रीड़ा करते हैं कारण कि जो साधु भाव

युक्त सदाचारी होते हैं वे दूसरे के प्राणों के घातक कदापि नहीं होते ॥ ४ ॥

तानि स्पर्शसुखानि ते च तरलाः स्निग्धा दृशोविभ्रमा
स्तद्वक्त्रांबुजसौरभं स च सुधास्पंदी गिरां वक्रिमा
सा विंबाधरमाधुरीति विषयासंगेऽपि मन्मानसं
तस्यां लग्नसमाधि हंत विरहव्याधिः कथं वर्तते ।५।

हे राधे। मैं तो कभी तुम्हारा स्पर्श करता हूँ व कभी तुम्हारे सुन्दर मुखका और कभी तुम्हारे चञ्चल नेत्रोंका दर्शन करता हूँ व कभी तुम्हारे मुखकमलका सुगंधीको सूँघता हूँ. कभी तुम्हारे मधुर मुसकान युक्त प्रिय वचन को श्रवण करता हूँ कभी तुम्हारे बिंबाधर अधरोष्ठों की सुन्दरता का दर्शन किया करता हूँ, इतने पर भी हे प्रिये राधे ! मेरी विरहरूपी पीड़ा क्यों शान्त नहीं होती ? यह बड़े आश्चर्य की बात है कि ध्यान से युक्त योगियों की तो व्याधि का नाश हो जाता है। पर मेरी व्याधि का नाश नहीं होता ? ॥ ५ ॥

तिर्यक्कंठविलोलमौलितरलोत्तंसस्य वंशोच्चरद्
गीतस्थानकृतावधानललनालक्षैर्न संलक्षिताः ॥
संमुग्धं मधुसूदनस्य मधुरे राधामुखेन्दौ मृदु—

स्पन्दं कंदलिताश्चिरं दधतु वः क्षेमं कटाक्षोर्मयः ।६।

इति श्रीगीतगोविन्दे मुग्धमधुसूदनो
नाम तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

श्रीराधाजी के चन्द्रवत् मुखपर श्रीकृष्ण के कटाक्षपात के हेतु कण्ठदेश टेढ़ा हुआ था। शिरके भूषण भी हिल गये थे। माधवजी की वंशीके गीत को सुनने में एकाग्रचित्त होनेके कारण गोपीने अनुभव नहीं किया था श्रीजयदेवजी कहते हैं कि इस प्रकार मधुसूदनके कटाक्ष रूपी तरंग आप भक्तों को बहुत कालतक कल्याणप्रद होवें ॥ ६ ॥

इति श्री गीतगोविन्दे महाकाव्ये तृतीयः सर्गः ॥३॥

—❀○❀—

अथ चतुर्थः सर्गः

(स्निग्ध माधव)

यमुनातीरवानीरनिकुञ्जे मन्दमास्थितम् ।
प्राह प्रेमभरोद्भ्रान्तं माधवं राधिका सखी ॥ १ ॥

श्रीयमुना नदी के तीर बेंतों के कुञ्ज में राधाजी के प्रेमसे उन्मत्त चुपचाप बैठे हुए हरिके प्रति राधाजी की कोई प्रिय सहेली जाकर यह वचन बोली ॥ ८ ॥

कर्नाटकरागे एकतालितालेे अष्टपदी ॥ ८ ॥

निन्दति चन्दनमिन्दुकिरणमनुविन्दति खेदमधीरम् ॥
व्यालनिलयमिलनेन गरलमिव कलयति मलय-
समीरम् ॥ सा विरहे तव दीना ॥ माधव मनसिज-
विशिखभयादिव भावनया त्वयि लीना ॥ध्रु० ॥१॥

हे माधव ! आपके विरह से व्याकुल कामदेव के प्रहार से आप ही में लीन राधा चन्दन और किरणसे भी हृदय शीतल न होने के कारण मलयागिरि की वायु को भी विष के समान मानती है अर्थात् उक्त पदार्थों से राधा के चित्त को शान्ति नहीं

मिलती कारण कि वह राधा आपके वियोगजनित दुःख से दुःखित है ॥ १ ॥

अविरलनिपतितमदनशरादिव भवदवनाय विशालम्॥
स्वहृदयमर्मणि वर्म करोति सजलनलिनदलजालम् ॥
॥ सा विरहे० ॥२॥

हे कृष्ण ! राधिका काम के बाण से अत्यन्त आतुर हो रही है। जलते हृदय में स्थित आपकी मोहनी मूर्ति को बचाने के लिए जल से भिगोये कमल के पत्तों से राधा जी ने अपने हृदय को ढक रक्खा है ॥ २ ॥

कुसुमविशिखशरतल्पमनल्पविलासकलाकमनीयम् ॥
व्रतमिव तव परिरंभसुखाय करोति कुसुमशयनीयम् ॥
॥ सा विरहे० ॥ ३ ॥

हे हरि ! वह राधा आपसे मिलने के हेतु कामदेव के बाणों के प्रहार से शरशय्यापर पड़ी है अर्थात् आप से मिलने के लिये शरशय्याव्रत कर रही है ॥ ३ ॥

वहति च चलितविलोचनजलधरमाननकमलमुदारम् ।
विधुमिव विकट विधुंतुददंतदलनगलितामृतधारम् ॥
सा विरहे० ॥ ४ ॥

बहती जलधारावाले लोचनोंसे अलंकृत राधाका सुन्दर मुख ऐसा मालूम पड़ता है जैसे राहु के भयंकर दाँतों से काट लिये जाने के कारण बहती अमृत धारा वाले चन्द्रमा का सुन्दर बिम्ब हो ॥ ४ ॥

विलिखति रहसि कुरंगमदेन भवंतमसमशरभूतम् ॥
प्रणमति मकरमधो विनिधाय करे च शरं नवचूतम् ॥
सा विरहे० ॥ ५ ॥

हे हरि ! वह राधा एकान्त में स्थित होकर आपकी मूर्ति को कामदेव के रूप में चित्रित करती है और आपकी मूर्ति के नीचे मकर को और आपके हाथ में आम्ररूपी कामदेव के बाण को लिखकर प्रणाम करती है ॥ ५ ॥

प्र तपदमिदमपि निगदति माधव तव चरणं पतिताहम्।
त्वयि विमुखे मयि सपदि सुधानिधिरपि तनुते तनु-
दाहम् ॥ सा विरहे० ॥ ६ ॥

और नम्र होकर राधा यह कहती है कि हे माधव ! मैं तुम्हारे चरण कमल में पतित होकर प्राथना करती हूँ कि तुम्हारे वियोग होने पर आज सुधानिधि भी यह चन्द्रमा मेरे शरीर को दग्ध कर रहा है ॥ ६ ॥

ध्यानलयेन पुरः परिकल्प्य भवंतमतीवदुरापम् ॥

विलपति हसति विषीदति रोदिति चंचति मुञ्चति तापम् ॥ सा विरहे ॥ ७ ॥

हे कुञ्जविहारी ! राधाजी किसी २ समय आपके स्वरूप का ध्यान करके और आपकी मनोहर मूर्ति को प्रत्यक्ष की भाँति देखकर अत्यन्त विलाप करती हैं और कभी आपको देखकर हँसा करती हैं, किसी समय आपके वियोगजनित दुःख से अत्यन्त रुदन करती हैं और आपसे मिलने के लिए इस निकुञ्ज में इधर-उधर बावली की भाँति घूमा करती हैं किसी समय आपके ध्यान में मग्न होकर आपकी नटवर मूर्ति के साथ विलाप कर आनन्द को म. प्राप्त होती हैं अर्थात् इसी व्याज से चिन्तारूपी ताप को दूर करती हैं ॥ ७ ॥

श्री जयदेवभणितमिदमधिकं यदि मनसा नटनीयम् ॥
हरिविरहाकुलवल्लवयुवतिसखीवचनं पठनीयम् ॥
सा विरहे ॥ ८ ॥

हे प्यारेभक्तों ! यदि अपने अन्तःकरण को आनन्द से मग्न किया चाहो तो इस जयदेव रचित राधा वियोग के गीत का पाठ करो ॥ ८ ॥

आवासो विपिनायते प्रियसखीमालापि जालायते
तापोऽपि श्वसितेन दावदहनज्वालाकलापायते ॥

साऽपि त्वद्विरहेण हन्त हरिणीरूपायते हा कथम् ।
कन्दर्पोऽपि यमायते विरचयन् शार्दूलविक्रीडितम् ॥

हे माधव ! दुर्भाग्य वश जैसे हरिणी सिंह से डरकर जलते हुए बनमें प्रवेश कर जाल में बँध जाती है, उसी भाँति राधाजी इस समय आपके विरह से हरिणी सदृश हो गई हैं। उनका निवास स्थान ज्वलित बन के तुल्य है, सब सखियाँ जाल की भाँति हैं श्वांस ही शरीर को जला रहा है और दुष्ट कामदेव हरिणी रूप राधा के पीछे शार्दूल रूपी यमराज होकर आपके वियोग में उसे मारना चाहता है ॥ १ ॥

देशाख्य एकतालिताले अष्टपदी ॥ १ ॥

स्तनविनिहितमपि हारमुदारम् । सा मनुते कृशतनु-
रतिभारम् ॥ राधिकाविरहे तव केशव माधव
वामन विष्णो ॥ ध्रु० ॥ १ ॥

हे केशव ! हे माधव ! हे विष्णो ! आपके विरह से व्याकुल वह राधा कृश (दुर्बल) शरीर के स्तनों पर रक्खे हुए उत्तमोत्तम हार को भार के समान मानती है ॥ १ ॥

सरसमसृणमपि मलयजपंकम् ।
पश्यति विषमिव वपुषि सशंकम् ॥ राधिका० ॥२॥

हे माधव ! आपके विरह से दुःखित वह राधा मलयागिरि के ओदे (गीले) चन्दन को भी विषवत् मानती है ॥ २ ॥

श्वसितपवनमनुपमपरिणाहम् ।
मदनदहनमिव वहति सदाहम् ॥ राधिका० ॥ ३ ॥

हे कृष्ण ! वह राधा अत्यन्त लम्बी श्वाँसों को आपके विरह में कामाग्नि के समान धारण करती है । अभिप्राय यह कि उसे वह श्वाँस भी जलाये देती है ॥ ३ ॥

दिशि दिशि किरति सजलकणजालम् ।
नयननलिनमिव विगलितनालम् ॥ राधिका० ॥ ४ ॥

हे माधव ! राधाजी के कमलनयन मृणाल से रहित नीर भरे कमल की भाँति चारो ओर देख कर अश्रु पात करते हैं ॥ ४ ॥

नयनविषयमपि किसलयतल्पम् ।
कलयति विहितहुताशविकल्पम् ॥ राधिका० ॥ ५ ॥

हे कृष्ण ! वह राधा आपके वियोग में देखती हुई भी पल्लवों से बनी शय्या को सन्देह वश अग्नि के समान मानती है ॥ ५ ॥

त्यजति न पाणितलेन कपोलम् ॥

बालशशिनमिव सायमलोलम् ॥ राधिका० ॥ ६ ॥

हे कुञ्जविहारी ! वह राधा हथेली पर कपोल को रखकर बैठी और उसका मुख सायंकाल के बाल चन्द्र की भाँति मालूम होता है ॥ ६ ॥

हरिरिति हरिरिति जपति सकामम् ॥
विरहविहितमरणेव निकामम् ॥ राधिका० ॥ ७ ॥

हे श्रीकृष्णचन्द्रजी ! वह राधा आपके वियोग से अपने मरणका निश्चय करके हरि शब्द जपती है। अभिप्राय यह कि अपना अन्त समय जान कर भगवद् भजन करती है ॥ ७ ॥

श्रीजयदेवभणितमिति गीतम् ॥
सुखयतु केशवपदमुपनीतम् ॥ राधिका० ॥ ८ ॥

यह राधा के विरह का वर्णन जयदेव कवि रचित भक्तजनों को सुखद हो ॥ ८ ॥

इति श्रीगीतगोविन्दे नवमः प्रबन्धः

सा रोमाञ्चति सीत्करोति विलपत्युत्कंपते ताम्यति
ध्यायत्युद्भ्रमति प्रमीलति पतत्युद्याति मूर्च्छत्यपि ॥
एतावत्यतनुज्वरे वरतनुर्जीवेन्न किन्ते रसात्
स्ववैंद्यप्रतिम प्रसीदसि यदि त्यक्तोऽन्यथा हस्तकः ॥१॥

हे हरि! वह राधा कभी विरह रूप विकार से ज्ञानशून्य होती है, कभी शरीर में रोमाञ्च खड़े होने से काँपती है, कभी ग्लानि को प्राप्त होती है, कभी चिन्ता करती है, कभी अत्यन्त भ्रम को प्राप्त होती है, कभी नेत्रोंको बन्द कर शय्यापर पड़ी रहती है, कभी-कभी इधर-उधर भ्रमवश खड़ी होकर देखती है, कभी मूर्छा को भी प्राप्त होती है, यह सब कामज्वरके चिन्ह राधा को सता रहे हैं। अश्विनीकुमार वैद्य के तुल्य यदि आप प्रसन्न होकर राधा को दर्शन देंगे तो क्या वह शृङ्गार रसके रससे जीवित न होगी? अवश्य ही जीवित होगी। यदि वैद्यरूप आप न जायेंगे तो छोड़ दिया गया है हाथ जिसका ऐसी वह राधा अवश्य मृत्युको प्राप्त होगी ॥ १ ॥

स्मरातुरां दैवतवैद्यहृद्य त्वदंगसंगामृतमात्रसाध्याम्
विमुक्तबाधांकुरुषे न राधामुपेन्द्रवज्रादपिदारुणोऽसि

हे अश्विनीकुमार सदृश वैद्य! यदि आप अपने शरीर स्पर्शरूपी औषधि से, कामदेव पीड़ित राधा को अच्छा नहीं करोगे तो हम भली भाँति मालूम कर लेंगे कि आपका हृदय इन्द्र के वज्र से भी अधिक कठोर है ॥ २ ॥

कंदर्पज्वरसंज्वराकुल तनोराश्चर्यमस्याश्चिरम्
चेतश्चन्दनचन्द्रमः कमलिनीचिन्तासु संताम्यति ॥

किन्तु क्षान्तिवशेन शीतलतनुं त्वामेकमेव प्रियम् ।
ध्यायन्ती रहसि स्थिता कथमपि क्षीणा क्षणं प्राणिति ३

हे कृष्ण ! कामज्वर से व्याकुल तथा कृश शरीरवाली राधाका चित्त चन्दन, चन्द्र, और कमलिनीका ध्यान करने परभी सन्तप्त हो उठता है, फिरभी शीतल देहवाले एक मात्र आपहीका ध्यान करती हुई वह एकान्तमें येन-केन प्रकारेण जीवित है ॥ ३ ॥

क्षणमपि विरहः पुरा न सेहे
नयननिमीलनखिन्नया यया ते ।
श्वसिति कथमसौ रसालशाखां
चिरविरहेण विलोक्य पुष्पिताग्राम् ॥ ४ ॥

हे माधव ! भला जिस राधाको पहले, नेत्रोंके पलक गिरने में भी उत्पन्न आपके दर्शनकी बाधा से खेद होता था वही राधा खिली हुई आमकी मंजरी को देखकर कैसे जी सकती है ॥ ४ ॥

वृष्टिव्याकुलगोकुलावनवशादुद्धृत्य गोवर्धनं
बिभ्रद्वल्लवसुन्दरीभिरधिकानन्दाच्चिरं चुम्बितः ।
कन्दर्पेण तदर्पिताधरतटीसिन्दूरमुद्राङ्कितो
बाहुर्गोपतनोस्तनोतु भवतां श्रेयांसि कंसद्विषः ॥५॥

इति श्रीगीतगोविन्दकाव्ये स्निग्धमाधवो नाम चतुर्थः सर्गः ॥४॥

वर्षासे व्याकुल गोकुलकी रक्षाके हेतु गोवर्द्धन पर्वत को उखाड़कर अपनी कनिष्ठिका अंगुली पर धारण करनेवाले, व्रज सुन्दरियों द्वारा आनन्द पूर्वक दीर्घ कालतक चुम्बित और काम के वशीभूत हो गोपियों द्वारा रखे गये अधरोंसे लाल-लाल मुद्रा-युक्त भुजाओंके धारणकरनेवाले, गोपवेषधारी कंस के शत्रु आनन्दकन्द भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र आपका कल्याण करें ॥५॥

इस प्रकारसे गीतगोविन्द काव्य के स्निग्धमाधव नामक
चतुर्थ सर्गकी हिन्दी टीका समाप्त हुई ।

—❀०❀—

पंचमः सर्गः

(साकांक्ष पुण्डरीकाक्ष)

अहमिह निवसामि याहि राधा-
मनुनय मद्वचनेन चानयेथाः ।
इति मधुरिपुणा सखी नियुक्ता
स्वयमिदमेत्य पुनर्जगाद राधाम् ॥१॥

राधाकी भेजी हुई सखी के प्रेमपूर्ण बचन सुनकर श्रीकृष्ण ने उससे कहा—"मैं इसी कुञ्जमें बैठा हूँ, आप जाइये और मेरी ओर से राधाका समझा-बुझाकर यहाँपर ले आइये" इस प्रकार श्रीकृष्णसे कही गई सखी राधा से जाकर पुनः बोली ॥१॥

देशवराडिरागे रूपकताले अष्टपदी ॥ १० ॥

वहति मलयसमीरे मदनमुपनिधाय ।
स्फुटति कुसुमनिकरे विरहिहृदयदलनाय ॥
तव विरहे वनमाली सखि सीदति ॥ ध्रु० ॥ १ ॥

हे राधे ! कामदेवको सहायक वनाकर मलयाचलकी हवा बहने पर और विरहिजनोंके हृदयोंको विदीर्ण करनेके लिये पुष्पोंके कलियोंके खिलनेपर हे सखि ! आपके विरहसे वनमाली पीड़ित हैं ॥ १ ॥

दहति शिशिरमयूखे मरणमनुकरोति ।
पतति मदनविशाखे विलपति विकलतरोऽति-
तव विर० ॥ २ ॥

हे सखि ! जिससमय चन्द्रमा अपने किरणोंसे श्रीकृष्णको जलाता है, उस समय श्रीकृष्ण मरनेके समय की व्यथा सदृश पीड़ित होते हैं और जब कामदेव उनके ऊपर तीक्ष्ण बाण चलाता है तब वे अत्यन्त दुःखसे व्याकुल हो विलाप करने लगते हैं ॥२॥

ध्वनति मधुपसमूहे श्रवणमपि दधाति ।
मनसि कलितविरहे निशि निशि
रुजमुपयाति ॥ तव विर० ॥ ३ ॥

हे प्रिये ! भ्रमरोंका झङ्कार न सुनाई दे इसलिये वे श्रीकृष्ण अपने कानोंको बन्द कर लेते हैं और विरहाक्रान्त हृदयमें आपके स्मरणसे उनकी व्यथा प्रति रात्रि बढ़ती जा रही है ॥ ३ ॥

वसति विपिनविताने त्यजति ललितधाम ।
लुठति धरणिशयने बहु विलपति तव नाम । तव०॥४

हे सखि ! आपके विरह में श्रीकृष्ण अपने सुन्दर राजमहल को छोड़कर घोर जङ्गलमें रह रहे हैं, पृथिवी पर ही सोते हैं, आपका नाम लेकर बारंबार विलाप करते हैं ॥ ४ ॥

रणति पिकसमुदाये प्रतिदिशमनुयाति ।
हसति मनुजनिचये विरहमपलपति नेति ॥ तव० ॥ ५ ॥

हे प्रियतमे ! कोयलोंके "कूहू-कूहू" करने पर श्रीकृष्ण चारो ओर उन्मत्त की भाँति दौड़ते हैं, इसपर जब लोग उनपर हँसते हैं, तब श्रीकृष्ण विरहको छिपाते हैं, और उससे कहते हैं कि "तुम मत होओ" ॥ ५ ॥

स्फुरति कलरवरावे स्मरति भणितमेव ।
तव रतिसुखविभवे बहुगणयति गुणमतीव ॥ तव० ॥ ६ ॥

हे सखि ! पक्षियों के मनोहर कलरवको सुनकर कृष्णको आपकी मधुर वाणीका स्मरण आ जाता है और आपकी रतिके आनन्दका काल्पनिक अनुभव कर वे रतिसुखको बारंबार बखाना करते हैं ॥ ६ ॥

त्वदभिधशुभदमासं वदति नरि शृणोति ।
तमपि जपति सरसं परयुवतिषु न रतिमुपैति ॥ तव० ॥ ७ ॥

हे प्रिये ! जब कोई प्राणी आपके नाम वाला मंगलमय वैशाख मास का नाम लेता है तब कृष्ण उसे अति प्रेमके साथ सुनते हैं और जपते हैं, अन्य युवतियों के साथ रति भी नहीं करते ॥ ७ ॥

भणति कविजयदेवे विरहिविलसितेन ।
मनसि रभसविभवे हरिरुदयतु सुकृतेन ॥ तव० ॥ ८ ॥

इस प्रकार श्रीकृष्ण भगवान् के वियोगरूपी वर्णनसे आनन्दयुक्त जयदेवकविके अन्तःकरणमें पुण्यसे श्रीकृष्ण प्रकट हों॥८॥

गुर्जररागेण एकतालिताले अष्टपदी ॥ ११ ॥

पूर्वं यत्र समं त्वया रतिपतेरासादिताः सिद्धय-
स्तस्मिन्नेव निकुञ्जमन्मथमहातीर्थ पुनर्माधवः ।
ध्यायंस्त्वामनिशं जपन्नपि तवैवालापमन्त्रावलिं
भूयस्त्वत्कुचकुम्भनिर्भरपरीरम्भामृतं वाञ्छति ॥ १ ॥

हे राधे ! जिस निकुञ्जमें सर्व प्रथम आपके साथ भगवान् श्रीकृष्णने कामदेवकी सिद्धियाँ प्राप्त की थीं आज उसी कामदेव के महातीर्थ ऐसे कुञ्जमें बैठकर श्रीकृष्ण दिन-रात आपका ही चिन्तन करते हुए, आपके नामाक्षरों से युक्त मन्त्रों को जपते हैं और आपके कलशतुल्य स्तनोंके दृढालिङ्गनरूपी अमृतकी अभिलाषा करते हैं ॥ १ ॥

रतिसुखसारे गतमभिसारे मदनमनोहरवेषम् ॥
न कुरु नितंबिनि गमनविलम्बनमनुसर तं हृदयेशम् ॥

धीरसमीरे यमुनातीरे वसति वने वनमाली ॥
गोपीपीनपयोधरमर्दनचंचलकरयुगशाली ॥ध्रु०॥१॥

हे प्रिये ! गोपियोंके पुष्टस्तनोंके मलनेमें चञ्चल हाथों वाले वनमाली, जहाँपर मन्द मन्द पवन चल रहा है ऐसे यमुना के तट पर बैठे हैं। इसलिये हे नितम्बिनि ! रतिके सुखका सार ऐसे अभिसारमें [संकेतस्थानमें] बैठे हुए कामदेवके सदृश सुन्दर अपने प्राणेशके समीप चलनेमें विलम्ब न करिये ॥ १ ॥

नामसमेतं कृतसङ्केतं वादयते मृदुवेणुम् ।
बहु मनुते तनुते तनुसङ्गतपवनचलितमपि रेणुम् ॥
धीर समीरे० ॥ २ ॥

हे सखी ! श्रीकृष्ण मधुर ध्वनिसे आपके नाम के संकेत से सयुक्त वंशी बजा रहे हैं और आपके शरीरके स्पर्श को प्राप्त धूलि भी जो पवन द्वारा उड़कर उन तक पहुँच रही है, उसके स्पर्श से अपने को धन्य समझते हैं ॥ २ ॥

पतति पतत्रे विचलतिपत्रे शंकितभवदुपयानम् ।
रचयति शयनं सचकितनयनं पश्यति तव पन्थानम्
धीर समीरे० ॥ ३ ॥

हे राधे ! पक्षियोंके उड़नेके शब्दको तथा पत्तोंकी खड़-खड़ाहटको सुनकर श्रीकृष्ण आपके आगमनकी सम्भावना करते हैं

और चकित होकर आपके आगमन मार्गको देखने लगते हैं तथा शय्या सजाने लगते हैं ॥ ३ ॥

मुखरमधीरं त्यज मंजीरं रिपुमिव केलिसुलोलम् ।
चल सखि कुञ्जं सतिमिरपुंजं शीलय नीलनिचोलम्
धीर समीरे० ॥ ४ ॥

हे प्रिये ! शब्दायमान और रतिक्रीडाके समय चञ्चल, शत्रुकी तरह इन अपने नूपुरोंको जल्द से जल्द निकाल दीजिये और नीले वस्त्रधारण कर घने इस कुञ्जमें चलिये ॥ ४ ॥

उरसि मुरारेरुपहितहारे घन इव तरलबलाके ॥
तडिदिव पीते रतिविपरीते राजसि सकृतविपाके ॥
धीर समीरे० ॥ ५ ॥

हे पीतवर्णे राधे ! चञ्चल बकुल पंक्ति से युक्त मेघकी तरह हीराके हारसे सुशोभित तथा बड़े पुण्य से उपलब्ध श्रीकृष्णके वक्षस्थलपर विपरीत रति करके बिजली की तरह आप चमकिये ॥ ५ ॥

विगलितवसनं परिहृतरशनं घटय जघनमपिधानम् ॥
किसलयशयने पंकजनयने निधिमिव हर्षनिधानम् ॥
धीर समीरे० ॥ ६ ॥

हे प्रिये! कोमल-कोमल पत्तोंके ऊपर सोनेवाले कमल नयन श्रीकृष्णके ऊपर, वस्त्र और करधनी उतार कर आनन्द का खजाना अपनी जाँघको मिलाइये ॥ ६ ॥

हरिरभिमानी रजनिरिदानीमियमपि याति विरामम्
कुरु मम वचनं सत्वररचनं पूरय मधुरिपुकामम् ॥
धीर स० ॥ ७ ॥

हे राधे! हरि अभिमानी हैं और इस समय यह रात भी व्यतीत हुई जा रही है, इसलिये मेरे कहे हुए वचनों को शीघ्र सफल कीजिये तथा श्रीकृष्णकी इच्छा पूरी करिये ॥ ७ ॥

श्रीजयदेवे कृतहरिसेवे भणति परमरमणीयम् ॥
प्रमुदितहृदयं हरिमतिसदयं नमत सुकृतकमनीयम् ॥
धीरसमीरे० ॥ ८ ॥

हरिकी सेवा करने वाले जयदेव कविके इस गीत के परमरमणीय गानेपर अत्यन्त प्रसन्नचित्तवाले, कृष्णको प्रणाम है ॥८॥

विकिरति मुहुः श्वासान्नाशाः पुरो मुहुरीक्षते
प्रविशति मुहुः कुञ्जं गुञ्जन् मुहुर्बहु ताम्यति।
रचयति मुहुः शय्यां पर्याकुलं मुहुरीक्षते
मदनकदनक्लान्तः कान्ते प्रियस्तव वर्तते ॥ १ ॥

हे प्रिये ! कामपीड़ित आपके प्रिय बारम्बार साँस लेते हैं, पुनः पुनः दिशाओं की ओर देखा करते हैं, बड़बड़ाते हुए बार-बार कुञ्जमें आते-जाते हैं, बारम्बार शय्याकी रचना किया करते हैं और अधीरता से इधर-उधर देखा करते हैं ॥ १ ॥

त्वद्वाक्येन समं समग्रमधुना तिग्मांशुरस्तंगतो
गोविन्दस्य मनोरथेन च समं प्राप्तं तमः सांद्रताम्
कोकानां करुणस्वनेन सदृशी दीर्घा मदभ्यर्थना
तन्मुग्धे विफलं विलंबनमसौ रम्योऽभिसारक्षणः ॥२॥

हे राधे ! आपके उत्तरकी प्रतीक्षाके साथ साथ देखिये, सूर्य भी अस्त हो गया, कृष्णके मनोरथके साथ-साथ यह अन्धेरा भी घना हो गया, चकवा-चकवीके करुण विलाप के सदृश मेरी लम्बी प्रार्थना भी समाप्त हो गयी इसलिये अब हे सुन्दरि ! चलने में विलम्ब करना व्यर्थ है, क्योंकि छिपकर चलनेका यही समय है ॥ २ ॥

आश्लेषादनु चुम्बनादनु नखोल्लेखादनु स्वान्तजा-
प्रोद्बोधादनु सम्भ्रमादनु रतारम्भादनु प्रीतयोः ॥
अन्यार्थं गतयोर्भ्रमान्मिलितयोः सम्भाषणैर्जानतो-
र्दम्पत्योर्निशि का न को न तमसि व्रीडाविमिश्रो रसः ॥३॥

हे सखि ! अन्धेरेके समय स्त्री तथा पुरुषके सङ्केतस्थानमें मिलने पर और परस्पर भाषणसे परिचय होने पर आलिङ्गन, चुम्बन, कुच-मर्दन, कुचोंपर नखक्षत, कामोद्दीप्ति उसके पश्चात् रतिका आरम्भ होता है, ऐसे समय लज्जासंयुक्त दोनों प्रेमी-प्रेमिकाओंको कौन-कौन रस प्राप्त नहीं होते ? ॥ ३ ॥

सभयचकितं विन्यस्यन्तीं दृशौ तिमिरे पथि
प्रतितरु मुहुः स्थित्वा मन्दं पदानि वितन्वतीम् ॥
कथमपि रहः प्राप्तामङ्गैरनंगतरङ्गिभिः
सुमुखि सुभगः पश्यन् स त्वामुपैतु कृतार्थताम् ॥४॥

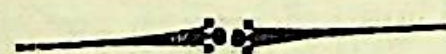
हे सखि ! अन्धेरी रातमें भयसे चकित चारो ओर देखनेवाली, वृक्षोंके नीचे बार-बार ठहर-ठहरकर धीरे-धीरे पैरों को बढ़ानेवाली, जिसके सारे शरीर में भगवान् कामदेव व्याप्त हो रहे हैं ऐसी आपको संकेत स्थलमें देखकर सौभाग्यशाली श्रीकृष्ण कृत-कृत्य होवें ॥ ४ ॥

राधामुग्धमुखारविन्दमधुपस्त्रैलोक्यमौलिस्थली
नेपथ्योचितनीलरत्नमवनीभारावतारक्षमः ॥
स्वच्छन्दं व्रजसुन्दरीजनमनस्तोषप्रदोषश्चिरं
कंसध्वंसनधूमकेतुरवतु त्वां देवकीनन्दनः ॥ ५ ॥

इति श्रीगीतगोविन्दे अभिसारिकावर्णने साकांक्ष-पुण्डरीकाक्षो नाम पञ्चमः सर्गः ॥ ५ ॥

राधाके सुन्दर मुखरूपी कमलके भ्रमररूप, तीनों लोकों के मुकुटरूप, वेषरचनाके लिये नीलमणिके समान, पृथ्वीका बोझ हलका करने में समर्थ, व्रजकी अङ्गनाओं के चित्तको प्रमुदित करनेके लिए संध्यारूप, कंसके विनाश करनेमें धूमकेतु (पुच्छल-तारा) के समान देवकीनन्दन आपकी रक्षा करें ॥ ५ ॥

इस प्रकारसे गीतगोविन्द काव्यके साकांक्षपुण्डरीकाक्षनामक पञ्चम सर्गकी हिन्दी टीका समाप्त हुई ॥



अथ षष्ठः सर्गः

(सोत्कण्ठ वैकुण्ठ)

आर्या—

अथ तां गंतुमशक्तां चिरमनुरक्तां लतागृहे दृष्ट्वा ।
तच्चरितं गोविन्दे मनसिजमन्दे सखी प्राह ॥ १ ॥

इसके अनन्तर गमन करनेमें असमर्थ तथा चिरकालसे अनुरागिणी राधाको लतागृहमें देखकर कामदेव से पीड़ित श्रीकृष्ण से एक सखीने राधाका चरित कहा ॥ १ ॥

पश्यति दिशि २ रहसि भवन्तम् ।
त्वदधरमधुरमधूनि पिवन्तम् ॥
नाथ हरे जय नाथ हरे सीदति राधा वासगृहे ॥ १ ॥

हे नाथ ! आपके अधर-रूपी मधुर मधुको पीति हुई एकान्त में बैठी हुई राधा प्रति दिशाओं में आपही को देख रही है । हे नाथ, हे हरे ! हे नाथ, हे हरे । आपकी जय हो । राधा वासागृहमें आपके लिये दुःखी हो रही है ॥ १ ॥

त्वदभिसरणरभसेन वलंती ॥
पतति पदानि कियन्ति चलन्ती ॥ नाथहरे० ॥२॥

हे कृष्ण ! वह राधा आपके विरह में इतनी दुर्बल हो गई है कि ज्योंही बेगसे आपके समीप आने लगती है त्योंही दो-चार पैर चलकर गिरने लगती है ॥ २ ॥

विहितविशदबिसकिसलयवलया ॥
जीवति परमिह तव रतिकलया ॥ नाथहरे० ॥ ३ ॥

हे कृष्ण ! सफेद कमलनाल तथा नवीन पल्लवके कड़े पहिननेवाली वह राधा एकमात्र आपके रतिके लोभसे जीवित है ॥ ३ ॥

मुहुरवलोकितमण्डनलीला ॥
मधुरिपुरहमिति भावनशीला ॥ नाथहरे० ॥ ४ ॥

हे नाथ ! वह राधा आपके समान अपने वेष की रचनाकर अत्यन्त अनुरागसे पुनःपुनः अपने आभूषणोंकी शोभाको निहारती है तथा "मैं ही कृष्ण हूँ" इस प्रकारकी भावना करती है ॥ ४ ॥

त्वरितमुपैति न कथमभिसारम् ॥
हरिरिति वदति सखीमनुवारम् ॥ नाथहरे० ॥ ५ ॥

हे भगवन् ! वह राधा अपनी सखीसे बार-बार यह कहती है कि हरि अभिसार (संकेतस्थान) में जल्दी क्यों नहीं आ रहे हैं ? ॥ ५ ॥

श्लिष्यति चुम्बति जलधरकल्पम् ॥
हरिरुपगत इति तिमिरमनल्पम् ॥ नाथहरे० ॥ ६ ॥

हे मधुरिपो ! वह राधा मेघके समान प्रगाढ़ अन्धकारको देखकर आपहीको आया हुआ समझ आलिङ्गन तथा चुम्बन करती है ॥ ६ ॥

भवति विलम्बिनि विगलितलज्जा ॥
विलपति रोदिति वासकसज्जा ॥ नाथहरे० ॥ ७ ॥

हे कंसरिपो ! आपके बिलम्ब करने पर वासकसज्जा की भाँति राधा निर्लज्ज होकर रोती तथा विलाप करती है ॥ ७ ॥

श्रीजयदेवकवेरिदमुदितम् ॥
रसिकजनं तनुतामतिमुदितम् ॥ नाथहरे० ॥ ८ ॥

जयदेवकविकृत यह गीत रसिकजनों के आनन्द को बढ़ावे॥८॥

विपुलपुलकपालिः स्फीतसीत्कारमन्त-
र्जनितजडिमकाकुव्याकुलं व्याहरन्ती ॥
तव कितव विधायामन्दकन्दर्पचिन्तां
रसजलधिनिमग्ना ध्यानलग्ना मृगाक्षी ॥ १ ॥

हे धूर्त ! आपका ध्यान करनेवाली और शृङ्गारादि रस रूपी समुद्रमें डुबकी लगानेवाली वह मृगनयनी राधा, कभी (ध्यान

करते समय) अत्यधिक कामकी चिन्तासे आपका शरीर स्पर्श हुआ ऐसा समझ कर रोमाञ्चित हो उठती है, आपने अधर चुंबन किया ऐसा समझकर सी-सी करती है, कभी जड़त्वके प्रादुर्भाव होने से वह व्याकुल होने लगती है ॥ १ ॥

अंगेष्वाभरणं करोति बहुशः पत्रेऽपि संचारिणि
प्राप्तं त्वां परिशङ्कते वितनुते शय्यां चिरं ध्यायती ॥
इत्याकल्पविकल्पतल्परचनासंकल्पलीलाशत-
व्यासक्तापि विना त्वया वरतनुर्नैषा निशां नेष्यति ॥२॥

हे कृष्ण ! पत्रों तककी खड़-खड़ाहट सुनकर वह राधा अपने अंगोंमें आभूषणोंको धारण करने लगती है, ऐसा समझकर कि आप आ रहे हैं, शय्याको सजाने लगती है एवं ध्यानमग्न होकर अनेकों विचारोंको करने लगती है, परन्तु विना आपके उसकी रात नहीं कटती ॥ २ ॥

किं विश्राम्यसि कृष्णभोगिभवने भांडीरभूमिरुहि
भ्रातर्यासि न दृष्टिगोचरमितः सानन्दनन्दास्पदम् ॥
राधाया वचनं तदध्वगमुखान्नन्दान्तिके गोपतो
गोविन्दस्य जयन्ति सायमतिथिप्राशस्त्यगर्भा गिरः ॥३॥

इति श्रीगीतगोविन्दे वासकसज्जावर्णने सोत्कण्ठवैकुण्ठो नाम षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

हे पथिक ! कृष्णसर्पके भवनरूप इस भाण्डीर वृक्षके नीचे क्यों विश्राम करते हो ? यहाँ तो कृष्ण—सर्पका निवास स्थान है। क्या-भाई ! आपको नन्दबाबाका आनन्द भवन नहीं दिखलाई पड़ता ? इस प्रकार राधा द्वारा कहे हुए वचनोंको पथिक-मुखसे सुनकर, नन्दबाबाके सम्मुख अपनी कलई खुलने के भयसे उन वचनोंको छिपानेवाले श्रीकृष्णने पथिकसे कहा—"आइये आपका स्वागत है" इत्यादि कहकर वह बात उड़ादी। इस तरह श्रीकृष्णसे कथित वाणी जययुक्त हो ॥ २ ॥

इस प्रकारसे गीतगोविन्द काव्यके सोत्कण्ठवैकुण्ठनामक षष्ठ सर्गकी हिन्दी टीका समाप्त हुई ॥



अथ सप्तमः सर्गः

(नागर नारायण)

अत्रान्तरे च कुलटा कुलवर्त्मपात-
सञ्जात पावक इव स्फुटलाञ्छन श्रीः ॥
वृन्दावनान्तरमदीपयदंशुजालैर्दि-
क्सुन्दरीवदनचन्दनविन्दुरिन्दुः ॥ १ ॥

इसी समय व्यभिचारिणी स्त्रियोंके मार्गको रोकनेसे उत्पन्न पापके कारणही मानों स्पष्ट कलङ्कित तथा पूर्वदिशारूपी रमणी-मुखके चन्दन—विन्दुके सदृश चन्द्रमाने अपनी किरणोंसे वृन्दावनको प्रकाशित कर दिया ॥ १ ॥

आर्या—

प्रसरति शशधरबिम्बे विहितविलम्बे च माधवे विधुरा ॥
विरचितविविधविलापं सा परितापं चकारोच्चैः ॥

चन्द्रबिम्बके फैल जानेपर और श्रीकृष्णके देर होनेपर वह विरहिणी राधा, नाना प्रकारसे, जोर-जोरसे विलाप करने लगी ॥२॥

कथितसमयेऽपि हरिरहह न ययौ वनम् ॥
मम विफलमेतदनुरूपमपि यौवनम् ॥
यामि हे कमिह शरणं सखीजनवचनवञ्चिता॥ध्रु०॥१॥

राधाने कहा-कहे हुए समय पर भी कृष्ण बनमें नहीं आये यह बड़े दुःख की बात है मेरा यह यौवन भी वृथा है, सखियोंसे ठगी गयी मैं अब किसकी शरणमें रहूँ अथवा जलाश्रय लेना ही उचित है। (डूब मरना चाहिये) ॥ १ ॥

यदनुगमनाय निशि गहनमपि शीलितम् ॥
तेन मम हृदयमिदमसमशरकीलितम् ॥यामि०॥२॥

जिन श्रीकृष्णके लिए मैंने रात्रि के समय इस घोर जंगलमें बास किया, उन्हीं कृष्णने मेरे हृदयमें कामदेवके असह्य बाणोंको गाड़ दिया ॥ २ ॥

मम मरणमेव वरमिति वितथकेतना ॥
किमिति विषहामि विरहानलमचेतना ॥यामि०॥३॥

इस जंगलमें अब मैं ज्ञान शून्य होकर विरहकी आग कैसे सह सकती हूँ, मेरा यह शरीर भी वृथा है इससे मृत्यु कहीं अच्छी है ॥ ३ ॥

मामहह विधुरयति मधुरमधुयामिनी ॥
कापि हरिमनुभवति कृतसुकृतकामिनी ॥ यामि॥४॥

अत्यन्त खेद है कि मनोहर वसन्तकी ये रात्रियाँ मुझे दुःख दे रही हैं और ये ही रात्रियाँ अन्य गोपाङ्गनाको जिसने पुण्य किया है, श्रीकृष्णके साथ आनन्द का अनुभव करा रही हैं ॥ ४ ॥

अहह कलयामि वलयादिमणिभूषणम् ॥
हरिविरहदहनवहनेन बहुदूषणम् ॥ यामि० ॥ ५ ॥

हन्त, श्रीकृष्णके विरहमें रत्न जड़े कङ्कण आदि आभूषण दूषणतुल्य हैं। अर्थात्-बिना पतिके मेरा सारा शृङ्गार व्यर्थ है॥५॥

कुसुमसुकुमारतनुमतनुशरलीलया ॥
स्रगपि हृदि हन्ति मामतिविषमशीलया ॥यामि०॥६॥

कामदेवके बाणोंकी लीलासे फूलोंके समान कोमलशरीरवाली मुझे, स्वभावसेही मृदु यह पुष्पमाला असह्य आघात पहुँचातीहै॥६॥

अहमिह निवसामि न गणितवनवेतसा ॥
स्मरति मधुसूदनो मामपि न चेतसा ॥ यामि०॥७॥

मैं तो प्यारे कृष्णके लिए जंगल और बेतोंकी परवाह न कर यहाँ रह रही हूँ, किन्तु मधुसूदन मुझे हृदयसे भी नहीं स्मरण करते ॥ ७ ॥

हरिचरणशरणजयदेवकविभारती ॥
वसतु हृदि युवतिरीव कोमलकलावती ॥ यामि० ॥८॥

कोमल कलासे युक्त, श्रीकृष्णके चरणके शरणवाली जयदेव कवि की यह वाणी आपके हृदयमें शृङ्गारकी समस्त कलाओं से युक्त युवतियों की तरह बसे ॥ ८ ॥

तत्किं कामपि कामिनीमभिसृतः किं वा कलाकेलिभि-
र्बद्धो बन्धुभिरन्धकारिणि वनोपान्ते किमु भ्राम्यति ।
कान्तः क्लान्तमना मनागपि पथि प्रस्थातुमेवाक्षमः
संकेतीकृतमञ्जुमञ्जुलताकुञ्जेऽपि यन्नागतः ॥१॥

सङ्केतस्थानमें कृष्णके न आनेपर राधा सोचने लगीं—क्या प्रियतम अन्य कामिनीके पास तो नहीं चले गये ? अथवा मित्रों के हास क्रीडामें तो नहीं फँस गये ? अथवा इस अरण्यमें अन्धेरेके कारण इतस्ततः भूलकर कहीं भटकते तो नहीं हैं? अथवा मेरी भाँति वियोगी होकर चलनेमें असमर्थ तो नहीं हो गये ? जैसे कि संकेत होने पर भी उनके वियोगसे एक पग भी मैं नहीं चल सकती वैसे ही वह भी हो गये क्या ? ॥ १ ॥

अथागतां माधवमन्तरेणसखीमियं वीक्ष्य विषादमूकाम्
विशंकमाना रमितं कयापि जनार्दनंदृष्टवदेतदाह ॥२॥

इसके बाद कार्यकी सिद्धि न होनेके कारण दुःखी तथा मौन होकर अकेली आती हुई सखीको देखकर क्या, कृष्ण किसी अन्य गोपाङ्गनाके साथ तो नहीं रमण करते हैं ? ऐसा प्रत्यक्ष देखे हुए की तरह राधाने कहा ॥ २ ॥

वसन्त रागे एकतालीताले अष्टपदी

स्मरसमरोचितविरचितवेशा ॥
गलितकुसुमदलविलुलितकेशा ॥
कापि चपला मधुरिपुणा ।
विलसति युवतिरधिकगुणा ॥ ध्रु० ॥ १ ॥

हे प्रिये ! कामदेवके साथ युद्ध करनेके अनुरूप रचे हुए वेष वाली इधर-उधर गिरे हुए बालोंके फूलवाली हमसे अधिक सुन्दरी कोई चपल कामिनी कृष्णके साथ रमण कर रही है क्या ?॥१॥

हरिपरिरम्भणवलितविकारा ॥
कुचकलशोपरि तरलितहारा ॥ कापि च० ॥ २ ॥

हे सखि ! श्रीकृष्णके आलिङ्गनसे उत्पन्न अनुराग वाली तथा कलशके समानकुचोंके ऊपर हिलते हुए हारवाली कोई कामिनी कृष्णके साथ विलास कर रही है क्या ? ॥ २ ॥

विचलदलकलिताननचन्द्रा ॥
तदधरपानरभसकृततन्द्रा ॥ कापि च० ॥ ३ ॥

हे प्रिये ! जिनके मुख चन्द्रपर चंचल अलकें शोभित हो रही हैं तथा प्रिय द्वारा अधरपानसे जिसे आलस्य आ रहा है, ऐसी किसी रमणीके साथ कृष्णचन्द्र रमण कर रहे हैं ॥ ३ ॥

चञ्चलकुण्डलदलितकपोला ॥
मुखरितरशनजघनगतिलोला ॥ कापि च० ॥ ४ ॥

चञ्चल कुण्डलोंकी रगड़ से जिसके कपोल घिस गये हैं, ऐसी और झन-झन शब्द करनेवाली करधनी युक्त कमरकी चञ्चल चालवाली कोई व्रजवनिता कृष्णके साथ आनन्द कर रही है ॥ ४ ॥

दयितविलोकितलज्जितहसिता ।
बहुविधकूजितरतिरसरसिता ॥ कापि च० ॥ ५ ॥

हे प्रिये ! रति क्रीडाके समय अनेक प्रकारकी मधुर वातोंको करती हुई श्रीकृष्णके अवलोकनसे लज्जा भावको प्राप्त और मुसकाती हुई कोई गोप-ललना कृष्णके साथ रम रही है ॥ ५ ॥

विपुलपुलकपृथुवेपथुभंगा ।
श्वसितनिमीलितविकसदनंगा ॥ कापि च० ॥ ६ ॥

हे सखी ! रतिश्रमसे उत्पन्न श्वाँस लेनेवाली तथा नेत्रोंकोबंद करनेसे जिसके प्रत्यङ्गमें काम भाव व्याप्त हो गया है, एवं रतिके

आनन्दसे अत्यधिक रोमाञ्चित शरीरवाली कोई व्रजवनिता कृष्णके साथ विहार कर रही है ॥ ६ ॥

श्रमजलकणभरसुभगशरीरा ।
परिपतितोरसिरतिरणधीरा ॥ कापि च० ॥ ७ ॥

रति-श्रमसे उत्पन्न पसीनेके बिन्दुओंसे सुन्दर शरीरवाली, तथा रतिके समय पतिके वक्षःस्थलपर सोनेवाली, रतिरूप समरमें अति गम्भीर, कोई व्रजांगना कृष्णके साथ आनन्द कर रही है ॥७॥

श्रीजयदेवभणितमतिललितम् ।
कलिकलुषं शमयतुहरिरमितम् ॥ कापि च० ॥ ८ ॥

अतिसुन्दर जयदेव कविकृत हरिके रमणका वर्णन कलियुगी पापोंको शान्त करे ॥ ८ ॥

विरहपांडुमुरारिमुखाम्बुज-
द्युतिरयं तिरयन्नपि वेदनाम् ।
विधुरतीव तनोति मनोभुवः ।
सुहृदये हृदये मदनव्यथाम् ॥ १ ॥

हे सुहृदये ! मेरे विरह से पीले रंगवाले श्रीकृष्णके मुखकमलके सदृश कान्तिवाला कामदेवका मित्र यह चन्द्र आनन्द-प्रद होनेपर भी मेरे चित्तमें काम व्यथा बढ़ाता है ॥ १ ॥

गुर्जररागे एकतालीताले अष्टपदी ॥ १५ ॥

समुदितमदने रमणीवदने चुम्बनवलिताधरे ॥
मृगमदतिलकं लिखति सपुलकं मृगमिव रजनीकरे ।
रमते यमुनापुलिनवने विजयी मुरारिरधुना ॥ध्रु०॥१॥

हे प्रिये ! कामसे देदीप्यमान चुम्बन करनेसे संकुचित और सुन्दर ओठों वाली गोप वधूके मुखपर श्रीकृष्ण, दर्पसे कस्तूरीका तिलक करते हैं, जैसे चन्द्रमें मृगचिन्ह है। ऐसे कामक्रीड़ा विजयी आनन्द कन्द कृष्ण इस समय यमुना तीरवाले उपवनमें रमण कर रहे हैं ॥ १ ॥

घनचयरुचिरे रचयति चिकुरे तरलित तरुणानने ॥
कुरुवककुसुमं चपलासुषुमं रतिपतिमृगकानने ॥
रमते य० ॥ २ ॥

हे सखि ! मेघोंके झुण्डके सदृश सुन्दर, युवतियोंके चित्तको चञ्चल करनेवाले, कामदेवरूपी हरिणके वनरूप गोपवनिता की चोटीमें कृष्ण बिजलीके समान शोभित पीले-पीले कुरैथाके पुष्प गूँथ रहे हैं ॥ २ ॥

घटयति सुघने कुचयुगगगने मृगमदरुचिरूषिते ॥
मणिसरममलंतारकपटलंनखपदशशिभूषिते ॥रमते॥३॥

हे प्रिये ! कस्तूरी की धूलिसे धूसरित उत्तुङ्गकुचों पर नखरूपी चन्द्रसे युक्त श्रीकृष्ण निर्मल मणियों के हाररूपी तारागणों को पहिनाते हैं ॥ ३ ॥

जितविसशकले मृदुभुजयुगले करतलनलिनीदले ॥
मरकतवलयं मधुकरनिचयं वितरति हिमशीतले ॥
रमते य० ॥ ४ ॥

हे सखि ! श्रीकृष्ण भगवान् कमलदण्ड की कोमलताको जीतनेवाले नलिनीदल के समान हथेली वाले, बरफके समान शीतल हाथों में कमल के ऊपर भौंरों के समान पन्ना रत्न जड़े कंकण पहिना रहे हैं ॥ ४ ॥

रतिगृहजघने विपुलापघने मनसिजकनकासने ॥
मणिमयरशनं तोरणहसनं विकिरति कृतवासने ॥
रमते य० ॥ ५ ॥

हे प्रिये ! श्रीकृष्ण कामदेव के लिए सुवर्णके आसन सदृश, सुवासित, विस्तृत और मोटे मोटे रतिके निवास स्थानरूपी जघन स्थलोंपर मणिरचित तोरणके समान करधनी पहिना रहे हैं॥५॥

चरणकिसलये कमलानिलये नखमणिगणपूजिते ॥
बहिरपवरणं यावकभरणं जनयति हृदि योजिते ॥
रमते य० ॥ ६ ॥

हे प्रिये ! वह श्रीकृष्णचन्द्रजी, नखरूपी मणियों से सुशोभित लक्ष्मीके निवासस्थान, कोमल-मोमल पल्लवों के समान किसी व्रजांगनाके चरणों को अपने वक्षः स्थलपर रखकर उनमें महावर लगा रहे हैं ॥ ६ ॥

रमयति भृशं कामपि सुदृशं खलहलधरसोदरे ।
किमफलमवसं चिरमिह विरसं वद सखि विटपोदरे ॥
रमते य० ॥ ७ ॥

हे प्रिये ! अब कि वह बलरामका छोटाभाई किसी सुनयनी के साथ विहार करता है, तब हे सखि ! बताओ मैं क्यों इस पेड़के नीचे बिना रसके उसकी प्रतीक्षा करूँ ॥ ७ ॥

इह रसभणने कृतहरिगुणने मधुरिपुपदसेवके ।
कलियुगचरितं न वसतु दुरितं कविनृपजयदेवके ॥
रमते य० ॥ ८ ॥

शृङ्गार रसका वर्णन करनेवाले, हरि–गुण-गान करनेवाले श्रीकृष्णके चरण-सेवक, जयदेव कविके अन्तः करणमें कलियुगके पापचरित का वास न हो ॥ ८ ॥

नायातः सखि निर्दयो यदि शठस्त्वं दूति किं दूयसे ।
स्वच्छन्दं बहुवल्लभः स रमते किं तत्र ते दूषणम् ॥

पश्याद्य प्रियसंगमाय दयितस्याकृष्यमाणं गुणै—
रुत्कण्ठार्तिभरादिव स्फुटदिदं चेतः स्वयं यास्यति॥१॥

हे सखि दूति ! यदि वे निर्दयी ठग कृष्णचन्द्र नहीं आये तो इसमें क्यों दुःखी हो रही है, क्योंकि वे तो अनेकों महिलाओंवाले हैं, उनके साथ स्वेच्छासे रमण करते हैं, इसमें तेरा क्या दोष ! देख, आज उस प्रियतम कृष्णके गुणों के वशीभूत होकर यह चित्त उत्कंठासे स्वयंही उनके समीप मिलने जायगा ॥ १ ॥

देशांकरागे रूपकताले अष्टपदी ॥ १६ ॥

अनिलतरलकुवलयनयनेन ।
तपति न सा किसलयशयनेन ।
सखि या रमिता वनमालिना ॥ ध्रु० ॥ १ ॥

हे सखि ! पवनसे चलायमान कमलके समान नेत्रवाले वनमालीके साथ जिस युवतीने विहार किया, वह कोमल-कोमल पल्लवों की शय्यापर सोने से दुःखी नहीं होती ॥ १ ॥

विकसितसरसिजललितमुखेन ।
स्फुटति न सा मनसिजविशिखेन ॥ सखि० ॥ २ ॥

हे आलि ! खिले हुए कमलके समान मुखवाले श्रीकृष्णके साथ सम्भोग करनेवाली व्रजवनिता, कामबाणोंसे पीड़ित नहीं होती ॥ २ ॥

अमृतमधुरमृदुतरवचनेन ॥
ज्वलति न सा मलयजपवनेन ॥ सखि या० ॥ ३ ॥

हे प्रिये ! अमृतके समान मधुर और कोमलभाषी कृष्णके साथ विहार करनेवाली व्रजवनिता मलयाचलकी वायु से कभी सताई नहीं जाती ॥ ३ ॥

स्थलजलरुहरुचिकरचरणेन ॥
लुठति न सा हिमकरकिरणेन ॥ सखि या० ॥ ४ ॥

हे सखि ! स्थलकमलके समान सुन्दर हाथ पैर वाले कृष्णके साथ आनन्दानुभव करने वालीको चन्द्रमाकी शीतल किरणें कभी नही सतातीं ॥ ४ ॥

सजलजलदसमुदयरुचिरेण ॥
दलति न सा हृदि विरहभरेण ॥ सखि या० ॥ ५ ॥

हे प्रिये ! जलपूर्ण मेघके सदृश वर्णवाले श्रीकृष्णके साथ जिस रमणीने रमण किया उसे चिरकालके वियोगकी व्यथा नहीं पीड़ा देती ॥ ५ ॥

कनकनिकष रुचिशुचिवसनेन ॥
श्वसिति न सा परिजनहसनेन ॥ सखि या० ॥ ६ ॥

हे आलि ! सुवर्णके समान पीताम्बरधारीकृष्णकेसाथ सम्भोग करनेवाली को सखियोंके ताना मारने से दुख नहीं होता ॥ ६ ॥

सकलभुवनजनवरतरुणेन ॥

वहति न सा रुजमतिकरुणेन ॥ सखि या० ॥ ७ ॥

हे सखि ! समस्त लोकके लोगोंमें सर्वश्रेष्ठ तरुण और परम दयालु कृष्णके साथ जिस गोप-वधूने विहार किया उसे काम पीड़ा नहीं सताती ॥ ७ ॥

श्रीजयदेवभणितवचनेन ।

प्रविशतु हरिरपि हृदयमनेन ॥ सखि या० ॥ ८ ॥

श्रीजयदेवकविके इस प्रकार के वचनों से कृष्ण भक्तों के हृदय में प्रवेश करें ॥ ८ ॥

मनोभवानन्दन चन्दनानिल
प्रसीद रे दक्षिण मुञ्च वामताम् ।
क्षणं जगत्प्राण विधाय माधवं
पुरो मम प्राणहरो भविष्यसि ॥ १ ॥

हे कामदेवको आनन्दित करनेवाले मलयाचल सम्बन्धी दक्षिण वायु ! कृपया अपनी कुटिलता त्यागिये, हे जगत्प्राण ! मेरे सामने माधवको उपस्थित कर तब मेरे प्राण हरिये ॥ १ ॥

रिपुरिव सखी संवासोऽयं शिखीव हिमानिलो
विषमिव सुधारश्मिर्यस्मिन् दुनोति मनोगते ॥

हृदयमदये तस्मिन्नेवं पुनर्बलते बलात्
कुवलयदृशां वामः कामो निकामनिरंकुशः ॥ २ ॥

हे प्रिये ! जब उस प्रियतम श्रीकृष्ण का स्मरण हो आता है तब सखियोंके साथ उठना बैठना शत्रुवत्, ठंडी वा अग्निवत्, अमृतकिरणधारी चन्द्र विषवत्, अति क्लेशकारी मालूम पड़ते हैं इतना होनेपर भी, उसी निर्दयी कृष्णकी याद आ जानेपर मेरा चित्त उनकी ओर झुका जाता है । वास्तवमें-मृगनयनियोंके लिए कामदेव अत्यन्त दुष्ट तथा निरंकुश है ॥ २ ॥

बाधां विधेहि मलयानिल पंचबाण
प्राणान् गृहाण न गृहं पुनराश्रयिष्ये ।
किं ते कृतान्तभगिनि क्षमया तरंगै-
रंगानि सिंच मम शाम्यतु देहदाहः ॥ ३ ॥

हे मलयाचलके पवन ! आप मुझे अपनी इच्छानुसार खूब सता लीजिये, हे पञ्चबाण ! (कामदेव) आप भी मेरे प्राणोंको हर लीजिये, मैं अब जीतेजी घर वापस नहीं जाऊँगी । हे यम-राजकी बहिन, यमुने ! आपभी मुझपर क्यों क्षमा करती हैं आप अपनी तरङ्गोंसे मेरे अंगोंको सींचे, जिससे मेरे शरीरका दाह सदा के लिये दूर हो जाय ॥ ३ ॥

सांद्रानन्दपुरन्दरादिदिविषद्वृन्दैरमन्दादरा-
दानन्दैर्मुकुटेन्द्रनीलमणिभिः संदर्शितेन्दीवरम् ।
स्वच्छन्दं मकरन्दसुन्दर गलन्मन्दाकिनीमेदुरं
श्रीगोविन्दपदारविन्दमशुभस्कन्दाय वन्दामहे ॥ ४ ॥

इति श्रीगीतगोविन्दे नागरनारायणो नाम सप्तमः सर्गः ॥७॥

अत्यधिक आनन्दसे युक्त इन्द्रादि देवगण रत्न जड़े मुकुटों से बड़े आदर के साथ जिन भगवान श्रीकृष्णके चरणोंको स्पर्श करते हैं और अपनी इच्छानुसार जिन भगवान श्रीकृष्णके चरण कमलोंके परागसे गंगाजल सदा व्याप्त रहता है; अशुभ नाशके लिये उनके पदारविन्दको प्रणाम है ।

इस प्रकार गीतगोविन्दकाव्यके नागर नारायण नामक
सप्तम सर्गकी टीका समाप्त हुई ।

—❀○❀—

अष्टमः सर्गः

(खण्डिता वर्णन – विलक्षण लक्ष्मीपति)

अथ कथमपि यामिनीं विनीय
स्मरशरजर्जरितापि सा प्रभाते ।
अनुनयवचनं वदन्तमग्रे
प्रणतमपि प्रियमाह साभ्यसूयम् ॥ १ ॥

इसके बाद किसी तरह रात बिताकर कामबाणोंसे पीड़ित होने पर भी वह राधा, प्रातःकाल आकर विनयपूर्वक शान्त्वना वचन से बोलने वाले और पैरों पड़नेवाले अपने प्रिय श्रीकृष्ण से ईर्ष्यायुक्त होकर बोली ॥ १ ॥

रजनिजनितगुरुजागररागकषायितमलसनिमेषम् ।
वहतिनयनमनुरागमिवस्फुटमुदितरसाभिनिवेशम् ॥
हरि हरि याहि माधव याहि केशव मा वद कैतववादम् ।
तामनुसर सरसीरुहलोचन या तव हरति विषादम् ॥
ध्रु० ॥ १ ॥

रात्रिके जागरणसे उत्पन्न थकावटके कारण आपके नेत्र लाल-लाल हो रहे हैं और पलक आलस्य से भरे दिखाई देते हैं ।

जिससे स्पष्ट प्रगट है कि किसी नायिकाके शृङ्गाररसका अनुराग इन नेत्रों में भरा हुआ है। अतः हे माधव ! आप उसी नायिकाके पास जाइये जो आप पर अनुरक्त है। हे कमलनयन ! आप उसी को अपनाइये जो आपके दुःखको दूर करती है, धूर्त्ततामरे वाक्यों को मेरे सामने न कहिये ॥ १ ॥

कज्जलमलिनविलोचनचुम्बनविरचितनीलिमरूपम् ।
दशनवसनमरुणं तव कृष्ण तनोति तनोरनुरूपम् ।
हरि० ॥ २ ॥

हे कृष्ण ! काजलसे काले काले नेत्रोंके चुम्बनसे आपके लाल-ओष्ठ नीले पड़ गये हैं और आपकी देहके रंगमें मिल गये हैं ॥ २ ॥

वपुरनुहरति तव स्मरसङ्गरखरनखरक्षतरेखम् ।
मरकतशकलकलितकलधौतलिपेरिव रतिजयलेखम् ।
हरि० ॥ ३ ॥

हे कृष्ण ! कामयुद्धमें तीखे-तीखे नाखूनोंके क्षतसे रेखायुक्त आपका शरीर ऐसा प्रतीत होता है जैसे—पन्नेके टुकड़ोंपर सुवर्णाक्षरों से रतिजय लेख लिखा गया हो, अर्थात् उस नायिकाने प्रसन्नहो आपको खूब नोचा है जिससे आपके शरीरमें विजय पानेके प्रमाणकी भाँति ये नखक्षत दिखाई दे रहे हैं, इसलिये हे नाथ ! आप उसीके पास जाइये ॥ ३ ॥

चरणकमलगलदलक्तकसिक्तमिदं तव हृदयमुदारम् ।
दर्शयतीव बहिर्मदनद्रुमनवकिसलयपरिवारम् । हरि०।४

हे कृष्ण ! उस नायिकाके चरणकमलों से निकले महावरसे सींचा हुआ यह आपका उदार हृदय ऐसा दिखाई देता है मानो, मदनरूपी वृक्ष के पत्तों का समूह बाहर आ गया हो । इसलिये आप उसीके पास जाइये ॥ ४ ॥

दशनपदं भवदधरगतं मम जनयति चेतसि खेदम् ।
कथयति कथमधुनापि मया सह तव वपुरेतदभेदम् ॥
हरि० ॥ ५ ॥

हे कृष्ण ! आपके ओठों पर परकीया अंगना से किये हुए दन्तक्षतको जब मैं देखती हूँ तब मेरे चित्तमें अत्यन्त खेद होता है, इतना होनेपर भी क्या आप हममें तथा तुममें अभेद है ? ऐसा कह सकते हैं ॥ ५ ॥

बहिरिव मलिनतरं तव कृष्ण मनोऽपि भविष्यति नूनम् ।
कथमथ वञ्चयसे जनमनुगतमसमशरज्वरदूनम् ।हरि०।६

हे कृष्ण ! मुझे ऐसा मालूम होता है कि जैसे आपका शरीर काला है वैसे ही आपका अन्तःकरण भी काला है । नहीं तो आपका ही अनुगमन करनेवाले काम पीड़ित मुझ सरीखे जनको क्यों छलते ? ॥ ६ ॥

भ्रमति भवानबलाकवलाय वनेषु किमत्र विचित्रम् ।
प्रथयति पूतनकैव वधूवधनिर्दयबालचरित्रम् ।हरि०।७।

हे कृष्ण ! आप इस जंगलमें अबलाओं को सतानेके लिये भ्रमण करते हैं, इसमें तनिक भी संशय नहीं, क्योंकि निर्दयता पूर्वक स्त्रियोंको मारने वाला आपका बालचरित पूतना ने ही प्रकट कर दिया है ॥ ७ ॥

श्रीजयदेवभणितरतिवञ्चितखण्डितयुवतिविलापम् ।
शृणुत सुधामधुरं विबुधा विबुधालयतोऽपि दुरापम्॥
हरि० ॥ ८ ॥

हे पंडित जनो ! जयदेवकवि विरचित सम्भोग शृङ्गार से वञ्चित खंडिता नायिकाका विरह विलाप सुनिये, अमृतके समान मधुर यह कृष्ण-चरित स्वर्गमें भी दुर्लभ है ॥ ८ ॥

तवेदं पश्यन्त्याः प्रसरदनुरागं बहिरिव
प्रियापादालक्तच्छुरितमरुणच्छायहृदयम्
ममाद्य प्रख्यातप्रणयभरभङ्गेन कितव !
त्वदालोकः शोकादपि किमपि लज्जां जनयति ॥१॥

हे धूर्त ! अन्य गोपवधू के पैरोंमें लगे हुए महावरसे आपका अन्तःकरण बाहरी अनुरागसे ही रञ्जित ज्ञात होता है। और

आपके इस कृत्रिम प्रेमको जानकर जगत्प्रसिद्ध आपके विपुल अनुरागके नाशके भयसे आपका दर्शन, शोकसे मुझे लज्जित करता है ॥ १ ॥

प्रातर्नीलनिचोलमच्युत उरः संवीतपीतांशुकं
राधायाश्चकितं विलोक्य हसति स्वैरं सखीमण्डले ।
व्रीडाचञ्चलमञ्चलं नयनयोराधाय राधानने
स्मेरस्मेरमुखोऽयमस्तु जगदानन्दाय नन्दात्मजः ॥२॥

इति श्रीगीतगोविन्दे खण्डितावर्णने विलक्षलक्ष्मीपति—
र्नामाष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

प्रातःकाल नीले रंगके वस्त्रोंको धारणकिये कृष्णको और पीताम्बर से अच्छादित राधाके वक्षःस्थलको देखकर सखियोंमें आश्चर्यकी सीमा न रही, तत्काल, लज्जायुक्त मन्द हास्यसे पूर्ण चञ्चल अपांगो द्वारा राधाके मुखकमलकी ओर निहारने वाले नन्द के पुत्र संसार के आनन्दके लिए हों ॥ २ ॥

इस प्रकार गीतगोविन्दकाव्यकी भावपूर्ण
अष्टम सर्गकी टीका समाप्त हुई ।

—❀○❀—

नवमः सर्गः

(मुग्ध-मुकुन्द)

अथ तां मन्मथखिन्नां रतिरसभिन्नां विषादसम्पन्नाम्
अनुचिन्तितहरिचरितां कलहान्तरितामुवाचरहःसखी॥

इसके बाद कामज्वरसे पीड़ित, रतिसुखरहित, अत्यन्त दुःखिता श्री कृष्णके चरितको निरंतर स्मरणकरनेवाली, कलहान्तरिता (पतिका तिरस्कार कर पश्चात्ताप करनेवाली) राधासे एकान्तमें एक सखी कहने लगी ॥ १ ॥

गुर्जररागे रूपकताले अष्टपदी ॥ १८ ॥

हरिरभिसरति वहति मधुपवने ।
किमपरमधिकसुखं सखि भवने ।
माधवे मा कुरु मानिनि मानमये । ध्रु० ॥ १ ॥

हे मानकरनेवाली राधिके ! अब आप कृष्णके विषयमें मान मत करिये, हे प्रिये ! यह वसन्तकी हवा बहने पर प्रिय कृष्ण स्वयं संकेतस्थलमें आ गये हैं हे सखि ! क्या घर पर इससे भी अधिक आनन्द मिलेगा ? ॥ १ ॥

तालफलादपि गुरुमतिसरसम् ।
किं विफलीकुरुषे कुचकलशम् ॥ माध० ॥ २ ॥

हे प्रिये ! ताल फलसे भी अधिक बड़े और अति सरस तथा कलशके समान इन स्तनोंको क्यों विफल कर रही हो ? ॥ २ ॥

कति न कथितमिदमनुपदमचिरम् ।
मा परिहर हरिमतिशयरुचिरम् ॥ माध० ॥ ३ ॥

अयि मानिनि ! मैंने कई बार नहीं कहा था क्या ? कि "परम सुन्दर कृष्णका परित्याग न करिये" ॥ ३ ॥

किमिति विषीदसि रोदिषि विकला ।
विहसति युवतिसभा तव सकला ॥ माध० ॥ ४ ॥

हे प्रिये ! अब आप क्यों पश्चात्ताप करती हो ! और क्यों व्याकुल होकर रोती हो, देखो यह सारी युवतियाँ आपका मज़ाक़ उड़ाती हैं ॥ ४ ॥

मृदुनलिनीदलशीतलशयने ।
हरिमवलोकय सफलय नयने ॥ माध० ॥ ५ ॥

हे मानिनि ! कोमल नलिनी के पत्तोंसे बनी शीतल शय्यापर कृष्णको देखकर अपनी आँखोंको कृतार्थ करिये ॥ ५ ॥

जनयसि मनसि किमिति गुरुखेदम् ।
शृणु मम वचनमनीहितभेदम् ॥ माधव० ॥ ६ ॥

हे प्रिये ! आप अपने मनमें क्यों इस तरह अधिक खेद करती हैं, मेरी बातको मानिये, मैं आपके हितकीही बात कहूँगी ६

हरिरुपयातु वदतु बहु मधुरम् ।
किमिति करोषि हृदयमतिविधुरम् ॥ माध० ॥ ७ ॥

हे मानिनि ! ऐसा उपाय करिये कि भगवान् श्रीकृष्ण आपके समीप आवें और आप इस तरहसे मीठी-मीठी उनसे बातें करें, अपने मनको क्यों क्लेशित कर रही हो ॥ ७ ॥

श्रीजयदेवभणितमतिललितम् ।
सुखयतु रसिकजनं हरिचरितम् ॥ माध० ॥ ८ ॥

जयदेव कविकृत अति सुन्दर श्रीकृष्ण चरित रसिकजनोंको सुखकारी हो ॥ ८ ॥

स्निग्धे यत्परुषासि यत्प्रणमति स्तब्धासि यद्रागिणि
द्वेषस्थासि यदुन्मुखे विमुखतां यातासि तस्मिन्प्रिये ।
तद्युक्तं विपरीतकारिणि तव श्रीखण्डचर्चाविषं
शीतांशुस्तपनो हिमं हुतवहःक्रीडामुदो यातनाः ॥१॥

हे राधे ! आप श्रीकृष्ण के प्रेम करने पर उनसे रूखा व्यवहार करती हो, उनके नम्र होनेपर कठोर हो जाती हो उनके अनुरक्त होनेपर विरक्त होती हो, उनके सामने आनेपर मुँहफेर खड़ी होती हो, इसीलिये आपको श्रीखण्ड चन्दन की चर्चा विष की तरह, चन्द्र सूर्य की तरह, हिम अग्नि की तरह, क्रीड़ा पीड़ा की तरह विपरीत लग रही है ॥ १ ॥

अन्तर्मोहनमौलिघूर्णनचलन्मन्दार विस्रंसनः
स्तब्धाकर्षणदृष्टिहर्षणमहामन्त्रः कुरङ्गीदृशाम् ।
दृप्यद्दानवदूयमानदिविषद्दुर्वारदुःखापदां
भ्रंशः कंसरिपोर्व्यपोहयतु वः श्रेयांसि वंशीरवः ॥२॥

इति श्रीगीतगोविन्दे कलहान्तरितावर्णने मुग्धमुकुन्दो
नाम नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

तरुण गोपियों को मोहित करने में जिनके मुकुट में लगे हुए पारिजात के फूल ढीले पड़ गये हैं, तथा जो अचेत पदार्थों तक को आकर्षित करते हैं, देखनेवालों को हर्षान्वित करते हैं, जो महामन्त्र स्वरूप हैं, उद्दण्ड दैत्यों से पीड़ित देवताओं के दुःखों का जो शमन करते हैं, उन भगवान् कृष्णके वंशीकी ध्वनि आप लोगों का कल्याण करे ।

इस प्रकारसे गीतगोविन्द काव्यके मुग्धमुकुन्द नामक नवम सर्गकी हिन्दी टीका समाप्त हुई ।

दशमः सर्गः

—:०:—

अत्रान्तरे मसृणरोषवशामसीम-

निःश्वासनिःसहमुखीं समुपेत्य राधाम् ।

सव्रीडमीक्षितसखीवदनां दिनान्ते

सानन्दगद्गदमिदं हरिरित्युवाच ॥ १ ॥

इसी समय सायङ्काल के समय अत्यन्त कुपित श्वासोच्छ्वास से म्लान मुखवाली, लज्जापूर्वक सखी के मुखको देखनेवाली सुन्दरमुखी राधाके समीप आकर कृष्णने आनन्द से गद्गद होकर कहा ॥ १ ॥

देशवराडिरागे अडवताले अष्टपदी ॥ १६ ॥

वदसि यदि किञ्चिदपि दन्तरुचिकौमुदी

हरति दरतिमिरमतिघोरम् ।

स्फुरदधरसीधवे तव वदनचन्द्रमा

रोचयति लोचनचकोरम् ॥

प्रिये चारुशीले प्रिये चारुशीले

मुञ्च मयि मानमनिदानम् ।

सपदि मदनानलो दहति मम मानसं

देहि मुखकमलमधुपानम् ॥ ध्रु० ॥ १ ॥

हे प्रिये ! आप यदि कुछ भी कहती हो तो आपकी दन्त-कान्ति मेरे भयरूपी घने अन्धकारको शमन कर देती है, और आपका मुखरूपी चन्द्रमा आपके फड़कते हुए अधरों की सुधा पीनेके लिए मेरे नयनरूपी चकोरों को ललचाता है । हे प्रिये चारुशीले ! मेरे ऊपर कृपा करके अकारण मानका परित्याग कीजिये और अपने मुखरूपी कमलका मधुपान कराइये क्योंकि कामाग्नि मेरे चित्तको जला रहा है ॥ १ ॥

सत्यमेवासि यदि सुदति ! मयि कोपिनी

देहि खरनखशरघातम् ॥

घटय भुजबन्धनं जनय रदखण्डनं

येन वा भवति सुखजातम् । प्रिये चारु० ॥२॥

हे सुन्दरदाँतों वाली ! यदि यथार्थमें आप मेरे ऊपर कुपित हों तो आप अपने नोकीले नाखूनरूपी बाणों से मेरे ऊपर प्रहार करें, दोनों भुजाओं से मुझे बाँध लें और दाँतों से काट लें ॥२॥

त्वमसि मम भूषणं त्वमसि मम जीवनं
त्वमसि मम भवजलधिरत्नम् ।
भवतु भवतीह मयि सततमनुरोधिनी
तत्र मम हृदयमतियत्नम् ॥ प्रिये चारु० ॥३॥

हे प्रिये ! आप मेरे लिए अलङ्कार हैं, आप मेरा प्राण हैं, आप मेरे लिए संसारमें रत्नके सदृश हैं, इसलिए सदा मेरे ऊपर आप कृपा करती रहें, आप मेरे ऊपर कृपालु हो इसके लिये मेरा हृदय सदा प्रयत्न करता रहता है ॥ ३॥

नीलनलिनाभमपि तन्वि ! तव लोचनं
धारयति कोकनदरूपम् ।
कुसुमशरबाणभावेन यदि रञ्जयसि
कृष्णमिदमेतदनुरूपम् ॥ प्रिये० चारु० ॥ ४ ॥

हे तन्वि ! आपके नेत्र नील कमलसे सदृश होनेपर भी कोपके कारण लाल कमलके सदृश हो रहे हैं, यदि अपने नेत्रको कामदेवके बाण समझकर मुझ कृष्णको रंग रही हो तो यह तुम्हारा रंगना ठीक ही है ॥ ४ ॥

स्फुरतु कुचकुम्भयोरुपरि मणि मञ्जरी
रञ्जयतु तव हृदयेशम् ।

रसतु रशनापि तव घनजघनमण्डले
　घोषयतु मन्मथनिदेशम् ॥ प्रिये चारु० ॥ ५ ॥

हे सुन्दरि ! आपके कलशरूपी स्तनोंपर रत्नोंका हार शोभायमान हो, और वह हार आपके वक्षःस्थलको अनुरक्त करे। हे प्रिये ! आपके सघन जघनमण्डलके ऊपर करधनीकी ध्वनि गूँजे, और वह करधनीकी ध्वनि कामदेवके आज्ञाको घोषणा करे ॥ ५ ॥

स्थलकमलगञ्जनं मम हृदयरञ्जनं
जनितरतिरङ्गपरभागम्।
भण मसृणवाणि करवाणिचरणद्वयं
सरसलसदलक्तकरागम् ॥ प्रिये चारु० ॥ ६ ॥

हे मधुरभाषिणि ! यदि आप कहें तो, स्थल कमलकी भी शोभा को मात करनेवाले, मेरे चित्तको आनन्दित करनेवाले, रतिरागमें असीम आनन्द देनेवाले, आपके इन दोनों पैरोंको, सरस और शोभायमान महावर से लाल कर दूँ ॥ ६ ॥

स्मरगरलखण्डनं मम शिरसि मण्डनं
देहि पदपल्लवमुदारम्।
ज्वलति मयि दारुणो मदनकदनानलो
हरतु तदुपहितविकारम्।

हे प्राणप्रिये ! कामदेवरूपी विषका नाश करनेवाले, अलंकार स्वरूप नवीन पत्तों के समान कोमल अपने चरणों को मेरे शिरपर रक्खें क्योंकि कामाग्नि की भयंकर ज्वाला मेरे हृदय में धधक रही है, इससे जरा शान्ति मिलेगी ॥ ७ ॥

इति चटुलचाटुपटुचारुमुरवैरिणो
राधिकामधिवचनजातम् ।
जयति पद्मावतीरमणजयदेवकवि-
भारतीभणितमिति गीतम् ॥ ८ ॥

इस प्रकार चञ्चल चतुरता और प्रेमरस से परिपूर्ण अतएव सुन्दर पद्माके पति जयदेव कविकी वाणी द्वारा राधाके प्रति आनन्द कन्द श्रीकृष्णकी उक्तियाँ सबसे बढ़-चढ़कर हैं ॥ ८ ॥

परिहर कृतातङ्के शङ्कां त्वया सततं घन—
स्तनजघनयाक्रान्ते स्वान्ते परानवकाशिनि ।
विशति वितनोरन्यो धन्यो न कोऽपि ममान्तरं
स्तनभरपरीरम्भारम्भे विधेहि विधेयताम् ॥ १ ॥

हे कामसन्तप्तहृदये ! मैं दूसरी नायिकाके पास जाता हूँ इस तरहकी शंकाओं को छोड़ दें क्योंकि कठोर स्तनों और सघन-जघनों वाली आपके मेरे हृदयमें व्याप्त हो जानेपर दूसरी नायिका

के रहनेके लिये मेरे हृदयमें स्थान ही नहीं रहता वह एक काम देवही धन्य है जो मेरे हृदय में प्रवेश करता है, इसलिये हे प्रिये! सुदृढ़ आलिंगन का पात्र मुझे बनाइए ॥ १ ॥

मुग्धे ! विधेहि मयि निर्दयदन्तदंशं
दोर्वल्लिबन्धनिबिडस्तनपीडनानि ।
चण्ड ! त्वमेव मुदमञ्चय पञ्चबाण-
चण्डालकाण्डदलनादसवः प्रयान्ति ॥ २ ॥

हे ग्धे ! आप मुझे निर्दयता पूर्वक दाँतोंसे काटिए, अपनी भुजारूप लताओं से मुझे बाँधिये और अत्यन्त कठोर अपने स्तनोंसे दबा दीजिये, मेरे जैसे अपराधी के लिए यही दंड है । हे चंडि ! आप ही मुझे प्रसन्न करें क्योंकि चंडाल कामदेवके बाणोंसे मेरे प्राण जा रहे हैं ॥ २ ॥

शशिमुखि ! तव भाति भङ्गुरभ्रू-
र्युवजनमोहकरालकालसर्पी ।
तदुदितभयभञ्जनाय यूनां
त्वदधरसीधुसुधैव सिद्धमन्त्रः ॥ ३ ॥

हे चन्द्रमुखि ! आपकी तिरछी भौंहें तरुण पुरुषोंको मोहनेमें अति भयङ्कर काले सर्पकी तरह हैं इन भौंहोसे उत्पन्न मूर्छा वाले

युवकों के भयके नाशके लिए आपकी अधररूपी सुधा ही सिद्धमंत्र अर्थात् रामबाण (औषधि) है ॥ ३ ॥

व्यथयति वृथा मौनं तन्वि ! प्रपञ्चय पञ्चमं
तरुणि ! मधुरालापैस्तापं विनोदय दृष्टिभिः ।
सुमुखि ! विमुखीभावं तावद्विमुञ्च न वञ्चय
स्वयमतिशयस्निग्धो मुग्धे ! प्रियोऽहमुपस्थितः ॥४॥

हे कृशांगि ! आपका मौनभाव मुझे वृथा कष्ट दे रहा है, हे तरुणि । मीठी-मीठी बातों से पंचम स्वरमें मुझसे बातें कर मेरे हार्दिक संताप को दूर करिये, हे चारुवक्त्रे ! मेरी ओर जरा प्रेमसे एक नजर देखिये, अब मुझे मत ठगिए, हे मुग्धे ! मैं आपका अनन्य प्रेमी स्वयं आ गया हूँ ॥ ४ ॥

बन्धूकद्युतिबान्धवोऽयमधरःस्निग्धो मधूकच्छवि-
र्गण्डश्चण्डि ! चकास्ति नीलनलिनश्रीमोचनं लोचनम्
नासाभ्येति तिलप्रसूनपदवीं कुन्दाभदन्ति प्रिये !
प्रायस्त्वन्मुखसेवया विजयते विश्वं स पुष्पायुधः ॥५॥

हे चंडि ! दुपहरियाके फूलके समान लाल-लाल यह आपका अधर, महुएके फूलके समान सुन्दर ये आपके चिकने गाल, नील कमला की कान्तिको चुरानेवाली आपकी ये आँखें तिलके फूलके

समान आपकी यह नासिका विलक्षण शोभा दे रही है। हे कुन्द सदृश दाँतों वाली! इस तरह कामदेव आपके ही मुखके आश्रय से विश्वविजय करता है १ बन्धूक, २ मधूक, ३ नीलोत्पल ४ तिलपुष्प और ५ कुन्दरूप पाँचो पुष्प-बाण आपहीके मुखपर विराजमान हैं ॥ ५ ॥

दृशौ तव मदालसे वदनमिन्दुमत्यान्वितं
गतिर्जनमनोरमा विधुतरम्भमूरुद्वयम् ।
रतिस्तव कलावती रुचिरचित्रलेखे भ्रुवा-
वहो विबुधयौवनं वहसि तन्वि ! पृथ्वीगता ॥ ६ ॥

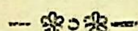
हे सुन्दरि ! आपकी आँखें मदसे भरी हुई हैं, आपका मुख चन्द्रमाके समान है, आपका गमन देखने वालों के मनको हरण करने वाला, आपकी आँघे केलेके खम्भोंको भी जीत चुकी हैं, आपकी रतिक्रीडा कलापूर्ण है, आपकी भौहें सुन्दर और विचित्र रेखाकी तरह हैं, हे तन्वि ! आश्चर्य है कि पृथिवीपर रहने पर भी आपमें सुराङ्गनाओंके गुण विद्यमान हैं ॥ ६ ॥

प्रीतिं वस्तनुतां हरिः कुवलयापीडेन सार्धं रणे
राधापीनपयोधरस्मरणकृत्कुम्भेन सम्भेदवान् ।
पत्रे बिभ्यति मीलति क्षणमपि क्षिप्रं तदालोकनाद्
व्यामोहेन जितं जितं जितमिति व्यालोलकोलाहलः॥७

इति श्रीगीतगोविन्दे मानिनीवर्णने चतुश्चतुर्भुजो नाम दशमः सर्गः ॥ १ ॥

कंसके हाथी कुवलयापीडके साथ युद्ध करते समय उसके कुम्भको भेदन करने वाले, राधाके उन्नत स्तनोंका स्मरण करनेवाले, भयदायी हाथीकी मृत्यु देखकर कंसको "जीतलिया जीतलिया" ऐसे कोलाहलोंको मचानेवाले, कार्य करनेवाले, श्रीकृष्ण भक्तों की प्रीतिको बढ़ावें ॥ ७ ॥

इस प्रकारसे गीतगोविन्द काव्यके चतुर्भुजनामक दशम सर्ग की हिन्दी टीका समाप्त हुई ।



एकादशः सर्गः

(सानन्द गोविन्द)

सुचिरमनुनयेन प्रीणयित्वा मृगाक्षीं
गतवति कृतवेषे केशवे कुञ्जशय्याम् । दृष्टि = श्रुति स्मृति
रचितरुचिरभूषां दृष्टिमोषे प्रदोषे √मुष = चौर्य।
स्फुरति निरवसादां कापि राधां जगाद ॥ १ ॥

बहुत देरतक अनुनय विनय करके राधाको प्रसन्न करलेने पर, सन्ध्या के समय श्रीकृष्णके कुञ्जमें शयन करने के लिये चले जाने पर और दृष्टि को चुरानेवाले प्रदोष समयके आजाने पर एक सखीने अच्छे शृङ्गारसे सजी अतिप्रमुदित हृदयवाली राधासे कहा ॥ १ ॥

वसन्तरागे रूपकताले अष्टपदी ॥ २० ॥

विरचितचाटुवचनरचनेन चरणरचितप्रणिपातम् ।
सम्प्रति मञ्जुलवञ्जुलसीमनि केलिशयनमनुयातम् ।
मुग्धे मधुमथनमनुगतमनुसर राधिके ॥ ध्रु० ॥ १ ॥

हे मुग्धे ! मधुर वचनोंको कह कर आपके पैरों पड़नेवाले, इस समय आपके अनुकूल मनोहर श्रीकृष्ण बेतके लतागृहमें क्रीडाशयन पर पधारे हैं, इसलिये हे राधे ! उन मधुरिपु श्रीकृष्णके समीप शीघ्र चलिये ॥ १ ॥

घनजघनस्तनभारभरे दरमन्थरचरणविहारम् ।
मुखरितमणिमञ्जीरमुपेहि विधेहि मरालविकारम् ॥
मुग्धे० ॥ २ ॥

हे सघन जाँघो तथा उभड़े हुए और कड़े-कड़े स्तनोंवाली प्यारी ! धीरे-धीरे अपने शिथिल पैरोंको पृथिवी पर रखती हुई तथा मणि नूपुरोंको बजाती हुई हंसकी चालसे श्रीकृष्णके समीप चलिये ॥ २ ॥

शृणु रमणीयतरं तरुणीजनमोहनमधुरिपुरावम् ।
कुसुमशरासनशासनवन्दिनि पिकनिकरे भज भावम् ॥
मुग्धे० ॥ ३ ॥

हे प्रिये ! युवतिजनोंको मोहित करनेवाले श्रीकृष्णकी बाँसुरीकी ध्वनि सुनिये तथा कामदेवकी आज्ञाके प्रचारके लिये वन्दीका काम करनेवाली कोकिलाओंके भावको भजिये ॥ ३ ॥

समेतम् ।

एकादशः सर्गः

अनिलतरलकुवलयनिकरेण करेण लतानिकुरम्बम् ।
प्रेरणमिव करभोरु ! करोति गतिं प्रति मुञ्च विलम्बम् ॥
मुग्धे० ॥ ४ ॥

हे करभोरु ! देखिये, इन लताओंका झुण्ड पवन द्वारा प्रेरित होकर चञ्चल पल्लवरूपी हाथोंसे आपको गमनकी प्रेरणा कर रहा है, इसलिये हे प्रिये ! विलम्ब न करें, जल्द चलिये ॥ ४ ॥

स्फुरितमनङ्गतरङ्गवशादिव सूचितहरिपरिरम्भम् ।
पृच्छ मनोहरहारविमलजलधारममुं कुचकुम्भम् ॥
मुग्धे० ॥ ५ ॥

हे सखि ! यदि मेरे इस बातका विश्वास नहीं है, तो कामदेवके तरंगके वशीभूत होकर चलायमान और श्रीकृष्णके आलिंगनको पहलहीसे सूचित करनेवाले एवं मनोहर हाररूपी जलधारा वाले कुम्भके समान अपने इन दोनों कुचों से पूछ लीजिये कि ये क्यों फुरफुरा रहे हैं ॥ ५ ॥

अधिगतमखिलसखीभिरिदं तव वपुरपि रतिरणसज्जम् ।
चण्डि ! रणितरशनारवडिण्डिममभिसर सरसमलज्जम् ॥
मुग्धे० ॥ ६ ॥

हे मानिनि! सभी सखियोंको यह बात अच्छी तरह मालूम हो चुकी है कि आपका शरीर रतिरूपी संग्रामके लिये प्रस्तुत है, ऐसी अवस्थामें हे चण्डि! लज्जाको त्यागकर प्रेमसे करधनी के शब्दको करती हुई आप संकेत स्थलकी ओर चलें ॥ ६ ॥

स्मरशरसुभगनखेन सखीमवलम्ब्य करेण सलीलम्।
चलवलयक्वणितैरवबोधय हरिमपि निजगतिशीलम्॥
मुग्धे ॥ ७ ॥

हे सुभगे। कामदेवके बाणके समान सुन्दर नखवाले हाथ से लीलापूर्वक बड़े हाव-भावके साथ सखीका हाथ पकड़कर चलिये और कामदेव के वशीभूत श्रीकृष्ण को हाथ के कड़े के घुंघरुओं को बजाकर अपने आने की सूचना दीजिये ॥ ७ ॥

श्रीजयदेवभणितमधरीकृतहारमुदासितवामम्।
हरिविनिहितमनसामधितिष्ठतु कण्ठतटीमविरामम्॥
मुग्धे ॥ ८ ॥

जयदेव कवि द्वारा कहा गया यह गीत रत्नों के हार को भी तिरस्कृत करने वाला, युवतियों को उदासीन बनानेवाला भगवद्भक्तों के कंठमें सदा निवास करे ॥ ८ ॥

सा मां द्रक्ष्यति वक्ष्यति स्मरकथां प्रत्यङ्गमालिङ्गनैः
प्रीतिं यास्यति रंस्यते सखि समागत्येति चिन्ताकुलः।

स त्वां पश्यति वेपते पुलकयत्यानन्दति खिद्यति
प्रत्युद्गच्छति मूर्छति स्थिरतमःपुञ्जे निकुञ्जे प्रियः ॥२॥

हे राधिके ! अत्यन्त अन्धकारमय लताकुञ्ज में विराजमान आपके प्रिय कृष्ण चिन्ताकुल होकर सोचते हैं-वे राधा मुझे देखेंगी मेरे साथ मीठी-मीठी प्रेमपूर्ण बातें करेंगी, हर एक अंगका आलिङ्गन कर प्रसन्न हो जायेंगी, तदनन्तर मेरे साथ रतिक्रीडा करेंगी, इसतरह अनेक प्रकारके मनोरथों के मनमें उत्पन्न होते हुए वे श्रीकृष्ण ध्यानमें आपको देखते हैं, देखकर काँप जाते हैं, पुलकित गात्र हो जाते हैं। स्वाप्निक समागमसुख का अनुभव करने लगते हैं, रतिश्रमसे पसीने-पसीने हो जाते हैं, तुम्हारी भावना से उठकर खड़े हो जानेपर तुमको सामने न पाकर मूर्छित हो जाते हैं ॥ २ ॥

अक्ष्णोर्निक्षिप कज्जलं श्रवणयोस्तापिच्छगुच्छावलीं
मूर्ध्नि श्यामसरोजदाम कुचयोः कस्तूरिकापत्रकम् ।
धूर्तानामभिसारसत्वरहृदां विष्वङ्निकुञ्जे सखि !
ध्वान्तं नीलनिचोलचारुसुदृशां प्रत्यङ्गमालिङ्गति ॥३॥

हे सखि राधे ! आँखोंमें काजल, कानोंमें मोरपंखके गुच्छे, सिरमें नील कमलोंकी माला और कुचोंपर कस्तूरीके रससे पत्र-रचना आदि द्वारा अपनेको सजाकर श्रीकृष्णके पास चलें। प्रायः अभिसार के लिये अत्यन्त आतुर धूर्तनायिकाओंके लिये संकेत

स्थानमें जानके लिये उपयुक्त आभूषण ही है, क्योंकि निकुञ्ज काले वस्त्र से सुन्दर नायिकाओं को फैला हुआ गाढ़ान्धकार उनके सर्वाङ्गोंका आलिङ्गन करता है ॥ ३ ॥

काश्मीरगौरवपुषामभिसारिकाणा-
मावद्धरेखमभितो मणिमञ्जरीभिः ।
एतत्तमालदलनीलतमं तमिस्र
तत्प्रेमहेमनिकषोपलतां तनोति ॥ ४ ॥

हे प्रिये ! केसर की कान्ति के समान शरीरवाली अभिसारिकाओं के लिये मणिमञ्जरियोंसे चारों ओर रेखा किया हुआ, तमालपत्रोंके समान अत्यन्त नील, यह अन्धकार, प्रेमरूपीसुवर्णकी कसौटी है। जैसे सुनार सुवर्णकी परीक्षा कसौटीपर करता है, उसीतरह प्रेमी प्रेमिकाओंकी परीक्षा अन्धेरेमें करते हैं ॥ ४ ॥

हारावलीतरलकाञ्चनकाञ्चिदाम-
केयूरकङ्कणमणिद्युतिदीपितस्य ।
द्वारे निकुञ्जनिलयस्य हरिं निरीक्ष्य
व्रीडावतीमथ सखी निजगाद राधाम् ॥ ५ ॥

उसके अनन्तर मालाओं, चमकदार सुवर्णकी करधनी, बाजबन्द और कङ्कण आदिमें लगे हुए मणियोंकी कान्तिसे जगमगाते हुए

लतागृहके द्वारपर श्रीकृष्णको देखकर लज्जावती राधासे एक सखी बोली ॥ ५ ॥

वराटिरागे अडवताले अष्टपदी ॥

मञ्जुतरकुञ्जतलकेलिसदने
विलस रतिरभसहसितवदने
प्रविश राधे ! माधवसमीपमिह ॥ ध्रुव ॥ १ ॥

क्रीडाके उत्साहसे प्रसन्नमुखवाली हे राधिके ! अतिसुन्दर लताकुञ्ज रूप क्रीडागृहमें जाइये और माधवके समीप जाकर उनके साथ रमण करिये ॥ १ ॥

नवभवदशोकदलशयनसारे
विलस कुचकलशतरलहारे ॥ प्रविश० ॥ २ ॥

कलशके समान स्तनों पर पञ्चल मुक्ताहार धारण करने वाली हे राधे ! नवीन अशोकके पत्तोंसे रचित शय्यापर श्रीकृष्ण के साथ रमण करिये ॥ ३ ॥

कुसुमचयरचितशुचिवासगेहे ।
विलस कुसुमसुकुमारदेहे ॥ प्रविश० ॥ ३ ॥

फूलों के समान सुकुमार शरीर वाली हे राधे! फूलों के समूह से निर्मित अतएव पवित्र इस शयनगृहमें जाइये और श्रीकृष्णके साथ आमोद कीजिये ॥ ३ ॥

चलमलयपवनसुरभिशीते ।

विलस रसवलितललितगीते ॥ प्रविश० ॥ ४ ॥

हे शृङ्गार रससे ओतप्रोत गीतगाने वाली राधे ! मलय-पर्वत की वायु से सुगन्धित और शीतल इस प्रेममन्दिरमें जाकर श्रीकृष्णके साथ विहार करिये ॥ ४ ॥

विततबहुवल्लिनवपल्लवघने ।

विलस चिरमिलितपीनजघने ॥ प्रविश० ॥ ५ ॥

हे चिर कालसे मिली हुई और मोटी २ जाँघवाली राधे ! फैली हुई नाना भाँतिकी लताओं के कोमल पत्तों के घने कुञ्जमें जाकर अपने प्यारे कृष्ण की प्रेमिका बनिये ॥ ५ ॥

मधुमुदितमधुपकुलकलितरावे ।

विलस दशनरभसरसभावे ॥ प्रविश० ॥ ६ ॥

हे कामदेवके उद्वेग से उत्पन्न शृङ्गार रसमें अनुराग रखने वाली राधे ! पुष्परसके आस्वाद से आनन्दपूर्वक झंकार करनेवाले भौरोंके झुण्डोंवाले लताभवनमें जाकर प्रेमरस चखिये ॥ ६ ॥

मधुरतरपिकनिकरनिनदमुखरे ।

विलस दशनरुचिरशिखरे ॥ प्रविश० ॥ ७ ॥

हे दाँतोंकी चमक दमक से शोभायमान शिखर मणिवाली राधे ! अत्यन्त मधुर कोकिलाओंकी वाणी से शब्दायमान लतागृहमें प्रवेशकर श्रीकृष्णके साथ विहार करिये ॥ ७ ॥

विहितपद्मावतीसुखसमाजे ।
कुरु मुरारे ! मङ्गलशतानि ॥
भणितजयदेवकविराजराजे ॥ प्रविश० ॥ ८ ॥

हे ~~कृष्णचन्द्र~~ मुरारी ! पद्मावती के सुखसमूह का निर्माण करने वाले कविराजों में जयदेव कविके लिये सैकड़ों प्रकार के मंगल का विधान करें ॥ ८ ॥

त्वां चित्तेन चिरं वहन्नयमतिश्रान्तो भृशं तापितः ।
कन्दर्पेण च पातुमिच्छति सुधासम्बाधबिम्बाधरम् ॥
अस्याङ्कं तदलङ्कुरु क्षणमिह भ्रूक्षेपलक्ष्मीलवक्रीते दास इवोपसेवितपदाम्भोजे कुतः सम्भ्रमः ॥९॥

हे राधिके ! आपको चिर कालतक चित्तमें धारण करने से अधिक थके हुए, कामदेवसे अत्यन्त सताये हुए श्रीकृष्ण, आपके सुधारस से परिपूर्ण कुन्दरू फलके सदृश लाल-लाल अधरों को पान करना चाहते हैं, इसलिए हे प्रिये ! इनकी गोदको क्षणमात्र के लिए शोभित कर दीजिये, क्योंकि ये कृष्ण, आपकी तिरछी भौंहों के इशारे पर खरीदे हुए दास के समान

आपके चरण कमलों की सेवा करनेवाले हैं। इसलिए इन श्रीकृष्ण के समीप जानेमें हिचकिचाहट कैसी ? ॥ १ ॥

सा ससाध्वससानन्दं गोविन्दे लोललोचना ।
सिञ्जाना मञ्जुमञ्जीरं प्रविवेश निवेशनम् ॥ ७ ॥

इसके बाद चञ्चल नयनी वह राधा, लज्जा और आनन्द के साथ अपने पायजेबकी मनोहर ध्वनि करती हुई उस लताकुञ्ज में चली गयी ॥ ७ ॥

वराडीरागे रूपकताले अष्टपदी ॥ २ ॥

राधावदनविलोकनविकसित विविधविकारविभङ्गम् ।
जलनिधिमिव विधुमण्डलदर्शनतरलिततुङ्गतरङ्गम् ॥
हरिमेकरसं चिरमभिलषितविलासम् ।
सा ददर्श गुरुहर्षवशंवदवदनमनंगनिवासम् ॥ ध्रु० ॥ १ ॥

राधाने, चन्द्रमण्डलको देखकर चञ्चल और ऊँचे तरङ्गवाले समुद्रके समान, राधाके मुखरूपी चन्द्रके दर्शनसे आनन्दित, अनेक प्रकारके श्रृङ्गाररस के भावों से पूर्ण, समभाववाले, चिर कालसे अपनी राधाके साथ विहार करनेकी इच्छा रखने वाले, हर्षसे आह्लादित मुखवाले और कामदेवके वासस्थानरूप कृष्ण को देखा ॥ १ ॥

हारममलतरतारमुरसि दधतं परिरभ्य विदूरम् ।
स्फुटतरफेनकदम्बकरम्बितमिव यमुनाजलपूरम् ॥
हरि० ॥ २ ॥

अत्यन्त सफेद फेनके समूहसे मिले हुए यमुना जलके प्रवाह के समान, जानुपर्यन्त लटकते हुए अति शुभ्र मुक्ताहारको वक्ष स्थल पर धारण किए हुए श्रीकृष्णको राधाने देखा ॥ २॥

श्यामलमृदुलकलेवरमण्डलमधिगतगौरदुकूलम् ।
नीलनलिनमिव पीतपरागपटलभरवलयितमूलम् ॥
हरि० ॥ ३ ॥

पीले रंग वाले परागसे व्याप्त नीलकमलसे समान कोमल शरीर पर पीताम्बर धारण किए कृष्णको राधा ने देखा ॥ ३ ॥

तरलदृगञ्चलचलनमनोहरमदनजनितरतिरागम् ।
स्फुटकमलोदरखेलितखञ्जनयुगमिव शरदि तडागम् ॥
हरि० ॥ ४ ॥

शरद ऋतमें खिले हुए कमलके मध्यमें क्रीडा करनेवाले दो खञ्जरीट पक्षियों से युक्त तालाबके समान चञ्चल नयनों की कोरों से मनोहर मुख द्वारा युवतियों में रतिकी अभिलाषा उत्पन्न करनेवाले श्रीकृष्णको राधाने देखा ॥ ४ ॥

वदनकमलपरिशीलनमीलितमिहिरसकुण्डलशोभम् ।
स्मितरुचिरुचिरसमुल्लसिताधरपल्लवकृतिरतिलोभम् ॥
हरि० ॥ ५ ॥

मुखकमलको देखने के लिए परस्पर मिले हुए सूर्यके समान कुण्डलोंसे विभूषित, मुसकराहटकी छविसे मनोहर और प्रफुल्लित अधर पल्लवों द्वारा रमणियों को रतिमें लोभ उत्पन्न करनेवाले श्रीकृष्णको राधाने देखा ॥ ५ ॥

शशिकिरणच्छुरितोदरजलधरसुन्दरकुसुमसुकेशम् ।
तिमिरोदितविधुमण्डलनिर्मलमलयजतिलकनिवेशम् ॥
हरि० ॥ ६ ॥

चन्द्रकिरणोंसे मिले हुए मेघके मध्यभागके समान मनोहर पुष्पों से सुन्दर केशवाले, अन्धेरेमें उदित चन्द्रमण्डलके समान निर्मल और मलयागिरि चन्दनका तिलक किये हुये श्रीकृष्णको राधाने देखा ॥ ६ ॥

विपुलपुलकभरदन्तुरितं रतिकेलिकलाभिरधीरम् ।
मणिगणकिरणसमूहसमुज्ज्वलभूषणसुभग शरीरम् ॥
हरि० ॥ ७ ॥

अत्यन्त रोमाञ्चित देहवाले, रति क्रीडाकी कलाओं से अधीर, मणियों के किरण समूह से प्रकाशमान, अलङ्कारों से सुन्दर शरीरवाले श्रीकृष्णको राधाने देखा ॥ ७ ॥

श्रीजयदेवभणितविभवे द्विगुणीकृतभूषणभारम् ।
प्रणमत हृदि विनिधाय हरिं सुचिरसुकृतोदयसारम् ॥
हरि० ॥ ८ ॥

हे भक्तों ! श्रीजयदेव कविके वर्णन किये हुए विभवकी अपेक्षा द्विगुणित अलङ्कारों से युक्त और चिरकाल से सञ्चित पुण्योदयके तत्त्वरूप श्रीकृष्णको चित्तमें धारण कर प्रणाम कीजिये ॥ ८ ॥

अतिक्रम्यापांगंश्रवणपथपर्यन्तगमन-
प्रयासेनैवाक्ष्णोस्तरलतरतारं पतितयाः ।
इदानीं राधायाः प्रियतमसमालोकसमये
पपात स्वेदाम्बुप्रसर इव हर्षाश्रुनिकरः ॥ ८ ॥

अतिप्रिय श्रीकृष्णके दर्शनके समय राधाके नेत्र, अपाङ्गों का अतिक्रमण करके कानतक चले गये इसी श्रमसे मानों उनके नेत्रों से पसीना आनन्दाश्रुके रूपमें जलधाराके समान बहने लगा ॥८॥

भजन्त्यास्तल्पान्तं कृतकपटकण्डूतिपिहित-
स्मिते याते गेहाद्बहिरवहितालीपरिजने ।

प्रियास्यं पश्यन्त्याः स्मरशरवशाकूतसुभगं
सलज्जाया लज्जा व्यगमदिव दूरं मृगदृशः ॥ ९ ॥

कान आदिके खुजलानेके बहानेसे अपनी मुस्कराहटको रोकनेवाली चतुर सखीजनोंके लतागृहसे बाहर चले जानेपर पलंग पर बैठो हुई कामदेवके बाणों के वशीभूत अतएव सुन्दर अपने प्रिय श्रीकृष्णचन्द्रके मुखको देखने वाली मृगनयनी राधाकी लज्जा स्वयं लज्जित होकर दूर चली गयी ॥ ९ ॥

जयश्रीविन्यस्तैर्महित इव मन्दारकुसुमैः
स्वयं सिन्दूरेण द्विपरणमुदा मुद्रित इव ।
भुजापीडक्रीडाहतकुवलयापीडकरिणः
प्रकीर्णासृग्बिन्दुर्जयति भुजदण्डो मुरजितः ॥ १० ॥

प्रचण्ड भुजदंड की क्रीडासे कंसके कुवलयापीड नामक हाथीको मारनेवाले, श्रीकृष्णके रक्तके बिन्दुओंसे व्याप्त भुजदंड की मानों विजयलक्ष्मीने प्रसन्न होकर पारिजातके फूलों से स्वयं पूजाकी हो और कुवलयापीडके संग्राम से हर्षित होकर स्वयं श्रीकृष्ण सिन्दूरसे उसको रञ्जित किये हों ऐसा श्रीकृष्ण का भुजदंड आपका कल्याण करे ॥ १० ॥

इह प्रकारसे गीतगोविन्द काव्य के सानन्दगोविन्दनामक
एकादशसर्गकी हिन्दी टीका समाप्त हुई ।

द्वादशः सर्गः

(सुप्रीत पीताम्बर)

गतवति सखिवृन्देऽमन्दत्रपाभरनिर्भर
स्मरशरवशाकूतस्फीतस्मितस्नपिताधराम् ।
सरसमनसं दृष्ट्वा राधां मुहुर्नवपल्लव-
प्रसवशयने निक्षिप्ताक्षीमुवाच हरिः प्रियाम् ॥ १ ॥

सखियों के लताकुंजके बाहर चले जानेपर अत्यन्त लज्जाके कारण और कामदेव के वशीभूत होनेसे मुस्कुराहटसे युक्त अधरोष्ठ वाली तथा रतिक्रीडाके लिए सानुराग और नव पल्लव एवं कुसुमों द्वारारचित शय्याको बार-बार अवलोकन करनेवाली राधाको देखकर कृष्णने कहा ॥ १ ॥

विभासरागे एकतालीताले अष्टपदी ॥ २३ ॥

किसलयशयनतलेकुरु कामिनिचरणनलिनिविनिवेशम्
तव पदपल्लववैरिपराभवमिदमनुभवतु सुवेषम् ।
क्षणमधुना नारायणमनुगतमनुसर मां राधिके !
॥ ध्रु० ॥ १ ॥

हे कामिनि ! कोमल-कोमल पत्तों से बनी सेजके ऊपर अपने चरण कमलों को रखिये और आपके पदपल्लवके शत्रु ये शय्या के पल्लव क्षणमात्र आपके पदपल्लवों द्वारा प्राप्त पराभवका अनुभव करें, हे प्रिये ! मुहूर्तमात्रके लिए नारायणके अनुकूल हो जाइये ॥ १ ॥

करकमलेन करोमि चरणमहमागमितासि विदूरम् ।
क्षणमुपकुरु शयनोपरि मामिव नूपुरमनुगतिशूरम् ॥
क्षण० ॥ २ ॥

हे प्रिये ! आप बहुत दूरसे आयी हैं इसलिये मैं अपने हाथों से आपके चरणों को दबाता हूँ । कृपया, मेरे ही तरह इन नूपुरों का भी आदर कीजिये । इनको शय्यापर उतार दीजिये ॥ २ ॥

वदनसुधानिधिगलितममृतमिव रचय वचनमनुकूलम् ।
विरहमिवापनयामि पयोधररोधकमुरसि दुकूलम् ॥
क्षण० ॥ ३ ॥

हे राधे ! आप अपने मुखके समान स्थित चन्द्रसे निकले अमृत तुल्य अनुकूल वचन कहिए मैं विरह के हटाये जानेकी तरह आपके कुचों पर के वस्त्रको हटाता हूँ ॥ ३ ॥

प्रियपरिरम्भणरभसवलितमिव पुलकितमन्यदुरापम् ।
मदुरसि कुचकलशं विनिवेशय शोषय मनसिजतापम् ॥

क्षण० ॥ ४ ॥

हे राधे ! प्रियके आलिंगन के लिए सन्नद्ध तथा रोमांचित और अन्यों को दुर्लभ कलशके सदृश इन स्तनों को मेरे वक्षःस्थलपर रखकर मेरी काम पीड़ा हरिये ॥ ४ ॥

अधरसुधारसमुपनय भामिनि ! जीवय मृतमिव दासम् ।
त्वयि विनिहितमनसं विरहानलदग्धवपुषमविलासम् ॥

क्षण० ॥ ५ ॥

हे भामिनि ! तुम्हारे में आसक्त, विलास रहित विरहरूप अग्निसे झुलसे शरीरवाले, मरे हुए की तरह इस सेवकको अपने अधररूपी अमृतका पानकराकर जीवित करो ॥ ५ ॥

शशिमुखि मुखरय मणिरशनागुणमनुगुणकण्ठनिनादम्
मम श्रुतियुगले पिकरवविकले शमय चिरादवसादम् ॥

क्षण० ॥ ६ ॥

हे चन्द्रानने ! अपने कंठके ध्वनिके समान करधनीके मणियों को बजाइये, तथा कोयलके ध्वनिसे व्यथित मेरे कानों के दुःखको शान्त करिये ॥ ६ ॥

सामतिविफलरुषा विकलीकृतमवलोकितुमधुनेदम् ।
मीलितलज्जितमिव नयनं तव विरम विसृज रतिखेदम् ॥
त्वण० ॥ ७ ॥

हे सुन्दरि ! सर्वथा व्यर्थ के क्रोध से उत्तेजित मुझे देखनेके लिये आपके ये नेत्र इस समय लज्जायुक्त हो बन्द हो रहे हैं, इसलिये विश्राम कीजिये, रति खेदको छोड़ दीजिये ॥ ७ ॥

श्रीजयदेवभणितमिदमनुपदनिगदितमधुरिपुमोदम् ।
जनयतु रसिकजनेषु मनोरमरतिरसभावविनोदम् ॥
त्वण० ॥ ८ ॥

पद-पद में श्रीकृष्णके आनन्दका वर्णन करनेवाले जयदेव कवि द्वारा रचित यह गीत रसिक जनों में सुन्दर शृङ्गार रसके आनन्दको उत्पन्न करे ॥ ८ ॥

प्रत्यूहः पुलकांकुरेण निविडाश्लेषे निमेषेण च
क्रीडाकूतविलोकितेऽधरसुधापाने कथाकेलिभिः ।
आनन्दाधिगमेन मन्मथकलायुद्धेऽपि यस्मिन्नभू-
दुद्भूतः स तयोर्बभूव सुरतारम्भः प्रियंभावुकः ॥१॥

उन श्रीकृष्ण तथा उनकी परम प्यारी राधाकी रतिक्रीड़ा जब आरम्भ हुई, उस समय प्रगाढ़ आलिंगन करते हुए रोमाञ्चका होना विघ्न मालूम होता था, क्रीड़ाके अभिप्रायसे देखनेके समय

पलक गिरनाभी विघ्नभूत लगता था, अधरामृत पान करते हुए केलिकथा भी कष्ट—दायिका प्रतीत होती थी, काम कलापूर्ण समर में उत्पन्न आनन्द भी उस समय सुरतरूपी समरमें विघ्नसा ही लगता था ॥ १ ॥

दोर्भ्यां संयमितः पयोधरभरेणापीडितः पाणिजै-
राविद्धोदशनैः क्षताधरपुटः श्रोणीतटेनाहतः ।
हस्तेनानमितः कचेऽधरमधुस्यन्देन सम्मोहितः
कान्तःकामपि तृप्तिमाप तदहो कामस्य वामा गतिः॥२

राधिकाके हाथोंसे बँधे, स्तनोंके भारसे दबे; नखों से क्षत किये गये, दन्तक्षत किए अधरवाले, कटिसे ताड़ित केशोंको हाथोंसे पकड़कर नमाये, अधरोंके मधुपानसे मोहित कृष्ण लोकोत्तर आनन्दको प्राप्त हुए। इसी कारण से कामदेवकी गतिको कुटिल कहा गया है ॥ २ ॥

माराङ्के रतिकेलिसङ्कुलरणारम्भे तया साहस-
प्रायं कान्तजयाय किञ्चिदुपरि प्रारम्भि यत्सम्भ्रमात् ।
निष्पन्दा जघनस्थली शिथिलितादोर्वल्लिरुत्कम्पितं
वक्षोमीलितमक्षि पौरुषरसः स्त्रीणां कुतः सिद्ध्यति॥३

सुरत क्रीड़ारूपी संग्रामके आरम्भ हो जानेपर राधिकाने साहससे पतिपर विजय प्राप्त करनेके लिए कुछ समयतक कृष्णके

वक्षस्थलपर सम्भ्रम पूर्वक विपरीत रति प्रारम्भ की, उस समय उनकी जाँघें स्तब्ध हो गयीं, बाहें शिथिल हो गयीं, छाती धड़कने लगी परमानन्दके समय आँखें ढँपने लगीं, ठीक ही है, स्त्रियोंमें पौरुष कहाँ से आ सकता है ॥ ३ ॥

तस्याःपाटलपाणिजाङ्कितमुरो निद्राकषाये दृशौ
निर्धूताऽधरशोणिमा विलुलितस्रस्तस्रजो मूर्द्धजाः ।
काञ्चीदामदरश्लथां चलमिति प्रातर्निखातैर्दृशो-
रेभिःकामशरैस्तदद्भुतमहोपत्युर्मनः कीलितम् ॥४॥

नखक्षत चिन्हित राधाके वक्षस्थल, रात्रिके जागरण से लाल लाल उनकी आँखें, चुम्बनसे नष्टलालिमा वाले अधरोष्ठ, बिखरे और शिथिल बन्धन वाले मालायुक्त केश, कमरकी करधनीके समीपके खुले हुए वस्त्र आदि प्रातःकाल देखकर श्रीकृष्ण का चित्त (पुनः) कामदेव के बाणों से विद्ध होने लगा ॥ ४ ॥

त्वामप्राप्य मयि स्वयंवरपरां क्षीरोदतीरोदरे
शङ्के सुन्दरि ! कालकूटमपिबन्मूढो मृडानीपतिः ।
इत्थंपूर्वकथाभिरन्यमनसो विक्षिप्यवामाञ्चलं
राधायाःस्तनकोरकोपरिचलन्नेत्रे हरिःपातु वः ॥५॥

हे क्षीरसागरके तीरपर स्वयंवरके लिए आई हुई सुन्दरि ! आपको न पा करके ही मृडानिपति शंकर ने विष पी लिया था

ऐसा मेरा अनुमान है। इस प्रकारकी अपनी पूर्व कथाकी स्मृतिसे अन्यमनस्क राधिकाके कुचों परका वस्त्र हटाकर प्रसन्न होनेवाले श्रीकृष्ण जी आपकी रक्षा करें ॥ ५ ॥

व्यालोलः केशपाशस्तरलितमलकैः स्वेदलोलौ कपोलौ
स्पष्टा दष्टाधरश्रीःकुचकलशरुचा हारिता हारयष्टिः ।
काञ्चीकाञ्चीद्गताशांस्तनजघनपदं पाणिनाच्छाद्यसद्यः
पश्यन्तीचात्मरूपंतदपिविलुलितं स्त्रग्धरेयंधुनोति ॥६॥

जिनका केशपाश बिखर गया है, अलकें चञ्चल हो गयी हैं, दोनों गाल पसीनेकी बूदोंसे गीले हो गये हैं, ओष्ठोंके ऊपर दन्तक्षत स्पष्ट विदित हो रहे हैं, कलश के समान स्तनोंकी शोभासे मुक्ताहार पराजित होगये हैं, करधनी सिकुड़ी हुई एक ओर पड़ी है—प्रातः अपनी ऐसी अवस्थापर राधाने अपने हाथों से कुचों और जघनको ढाँक अपने रूप को देखती और साधारण फूलोंकी मालाको धारण करती हुई भी वह श्रीकृष्णको आनन्दकारिणी मालूम पड़ी ॥ ६ ॥

ईषन्मीलितदृष्टिमुग्धहसितं सीत्कारधारावशा-
दव्यक्ताकुलकेलिकाकुविकसद्दन्तांशुधौताधरम् ।
श्वासोत्कम्पिपयोधरोपरि परिष्वङ्गात्कुरङ्गीदृशो
हर्षोत्कर्षविमुक्तनिःसहतनोर्धन्यो धयत्याननम् ॥ ७ ॥

कामकेलिकी उत्कंठासे उत्पन्न शिथिल स्वासोच्छ्वासके कारण कुछ हिलते हुए कुचोंके आलिंगन से, हर्षके अतिरेकसे कुछ बन्द नेत्रवाले और सुन्दर हास्यसे युक्त तथा लगातार सीत्कारोंके वश अव्यक्त एवं व्याकुलता से उत्पन्न शब्दों से विकसित दाँतोंकी कान्तिसे प्रक्षालित अधरवाले मुखका पान (चुम्बन) विरले ! भाग्यवान् करते हैं ॥ ७ ॥

अथ सा निर्गतबाधा राधा स्वाधीनभर्तृका ।
निजगाद रतिक्लान्तं कान्तं मण्डनवाञ्छया ॥ ८ ॥
इति सहसा सुप्रीतं सुरतान्ते सा नितान्तखिन्नाङ्गी ।
राधा जगाद सादरमिदमानन्देन गोविन्दम् ॥ ९ ॥

उसके बाद शान्त काम की बाधा वाली, रतिके अन्तमें नितान्त खिन्न अङ्गवाली स्वाधीन भर्तृका वह राधा अपने शृङ्गार करनेके लिए रति श्रम शान्त प्रिय कृष्णसे बोली ; सम्मानिनि रतिश्रमसे थकी वह राधा आनन्द और आदर पूर्वक अपने प्रिय श्रीकृष्णसे बोली ॥ ८९ ॥

रामकरीरागे रूपकताले अष्टपदी

कुरु यदुनन्दन चन्दनशिशिरतरेण करेण पयोधरे ।
मृगमदपत्रकमत्र मनोभवमङ्गलकलशसहोदरं ॥
निजगाद सा यदुनन्दने क्रीडति हृदयानन्दने ॥
ध्रु० ॥१॥

हृदयको प्रफुल्लित करनेवाले श्रीकृष्णके साथ क्रीडा करती हुई राधाने कहा—"हे श्रीकृष्णचन्द्र ! चन्दनके समान अति शीतल अपने हाथोंसे कामदेवके मंगल कलश की तरह मेरे स्तनों पर कस्तूरीसे पत्र रचना कीजिये ॥ १ ॥

अलिकुलगञ्जनसञ्जनकं रतिनायकसायकमोचने ।
त्वदधरचुम्बनलम्बितकज्जलमुज्ज्वलय प्रिय लोचने ॥
निज० ॥ २ ॥

हे प्रिय पीताम्बरधारिन् ! कामदेवके बाणोंको छोड़नेवाले, मेरे नेत्रोंमें भ्रमरोंके समूहके समान, आपके अधरोंके चुम्बनसे मिटे हुए मेरी आँखोंके कज्जलको उज्ज्वल करिये ॥ २ ॥

नयनकुरंगतरंगविलास निरोधकरे श्रुतिमण्डले ।
मनसिजपाशविलासधरे शुभवंशे निवेशाय कुंडले ॥
निज० ॥ ३ ॥

हे प्रियतम ! नेत्ररूपी हरिणीके विलासको रोकनेवाले मेरे कानोंमें कामदेवके पाश के समान कुण्डल पहनाइये ॥ ३ ॥

भ्रमरचयं रचयन्तमुपरि रुचिरं सुचिरं मम सम्मुखे ।
जितकमले विमले परिकर्मय नर्मजने कमलकं मुखे ॥
निज० ॥ ४ ॥

हे मनोहरवेषधारिन् श्रीकृष्ण ! जिसके ऊपर भ्रमर उड़ रहे हैं ऐसे मनोहर तथा स्वच्छ कमलों को जीतनेवाले, आनन्दको देनेवाले मेरे मुखपर गिरनेवाले सुन्दर अलकावलीको आप गूँथिये ॥ ४ ॥

मृगमदरसवलितं ललितं कुरु तिलकमलिकरजनीकरे ।
विहितकलंककलं कमलानन विश्रमितश्रमसीकरे ॥
निज० ॥ ५ ॥

हे कमलके समान मुखवाले श्रीकृष्ण ! रतिके श्रमसे उत्पन्न स्वेदबिन्दु से युक्त अर्धचन्द्र के समान मेरे भालपर कलंकरेखाके समान कस्तूरीसे सुन्दर तिलक लगाइये ॥ ५ ॥

मम रुचिरे चिकुरे कुरु मानद मनसिजध्वजचामरे ।
रतिगलिते ललितेकुसुमानिशिखण्डिशिखण्डकडामरे॥
निज० ॥ ६ ॥

हे मान को देनेवाले श्रीकृष्ण ! रति के समय शिथिल हुए मोरपंखके समूहके सदृश सुन्दर कामदेव की पताका के समान मेरे केशपाश में फूल गूँथिये ॥ ६ ॥

सरसघने जघने मम शम्बरदारणवारणकन्दरे ।
मणिरशनावसनाभरणानि शुभाशुभ वासय सुन्दरे ॥
निज० ॥ ७ ॥

हे प्राणनाथ ! परमानन्दमय और कामदेवरूपी मदोन्मत्त हाथीकी कन्दरारूपी मेरे सुन्दर जघनोंपर आप रत्नोंकी करधनी, वस्त्र और आभूषण पहनाइये ॥ ७ ॥

श्रीजयदेववचसि शुभदे हृदयं सदयं कुरुमण्डने ।
हरिचरणस्मरणामृतनिमितकलिकलुषज्वरखण्डने ॥
निज० ॥ ८ ॥

हे भगवद्भक्तो ! भगवान् श्रीकृष्णके ध्यानरूपी अमृतसे कलियुगी पाप के नाशक, कल्याणप्रद और अलंकार के समान मनोहर जयदेवकवि द्वारा रचित इस गीतकी ओर अपने अन्तःकरणों को लगाइये ॥ ८ ॥

रचय कुचयोः पत्रं चित्रं कुरुष्व कपोलयो-
र्घटय जघने काञ्चीमञ्च स्रजा कबरीभरम् ।
कलय वलयश्रेणीं पाणौ पदे कुरु नूपुरा-
विति निगदितः प्रीतः पीताम्बरोऽपि तथाकरोत् ॥१॥

हे प्राणप्रिय ! आप मेरे स्तनोंपर सुन्दर पत्र रचना कीजिये, गालोंपर लताबेल आदि की रचना कीजिए, कमरमें करधनी पहनाइये पैरोंमें पैजेब पहनाइये, इस तरह राधासे कहे गये पीताम्बरधारी कृष्णने वैसा ही किया ॥ १ ॥

पर्यङ्कीकृतनागनायकफणाश्रेणीमणीनां गणे
सङ्क्रांतप्रतिबिम्बसङ्कलनयाबिभ्र द्वपुर्विक्रियाम् ।
पादाम्भोरुहधारिवारिधिसुतामक्ष्णां दिदृक्षुःशतैः
कायव्यूहविचारयन्नुपचिताकूतो हरिः पातु वः ॥२॥

शय्यारूप शेषनाग के फणमण्डल के मणियों में प्रतिबिम्बित अनेक वेषोंको धारण करनेवाले, चरणसेवा करनेवाली लक्ष्मीको सैकड़ों नेत्रोंसे देखनेकी इच्छा रखनेवाले काम भावयुक्त भगवान् आपकी रक्षा करें ॥ २ ॥

यद्गान्धर्वकलासु कौशलमनुध्यानं च यद्वैष्णवं
यच्छृङ्गारविवेकतत्त्वरचनाकाव्येषुलीलायितम् ।
तत्सर्वं जयदेवपण्डितकवेः कृष्णैकतानात्मनः
सानन्दाः परिशोधयन्तु सुधियः श्रीगीतगोविन्दतः॥३॥

गानविद्यामें जो चतुरता है श्रीकृष्णचन्द्रजीका जो ध्यान है, तथा शृंगार रस के वास्तविक स्वरूप की रचना वाले काव्योंमें जो भगवल्लीला का वर्णन है उन सबको, श्रीकृष्णमें एकाग्रचित्त रखनेवाले पण्डित जयदेवकविकृत गीतगोविन्दसे सीखें ॥ ३ ॥

साध्वी माध्वीकचिन्ता न भवति भवतः शर्करे कर्कशासि । द्राक्षे द्रक्ष्यन्ति के त्वाममृत मृतमसि क्षीर

नीरं रसस्ते । माकन्द ! क्रन्द कांताधर धरणितलं गच्छ यच्छन्ति भावम् । यावच्छृंगारसारस्वतमिह जयदेवस्य विष्वग्वचांसि ॥ ४ ॥

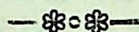
जयदेवकवि अपने काव्यकी प्रशंसामें कहते हैं—'इस लोक में जबतक यह शृङ्गार-रस प्रधान काव्य स्थित है, तबतक हे माध्वीक ! तेरी चिन्ता व्यर्थ है, अर्थात् शृङ्गार रस के काव्य की मधुरिमाके सामने तेरी मिठास फीकी है । हे शर्करे (शक्कर) तुम इसकी तुलनामें कठिन हो । हे द्राक्षे ! तुम्हें इसके सामने कौन देखेगा ? हे अमृत ! तुम इसके सामने मृत तुल्य हो । हे क्षीर ! तुम्हारा स्वाद इसके सामने पानी सा है । हे माकन्द ! तुम अब रोओ ! हे प्रियतमाके अधर तुम भी पातालमें चले जाओ । अर्थात् मेरे काव्य रसकी तुलनामें उपर्युक्त सभी वस्तुएँ नीरस हैं ॥ ४ ॥

श्रीभोजदेवप्रभवस्य राधादेवीसुतश्रीजयदेवकस्य । पराशरादिप्रियवर्गकण्ठेश्रीगीतगोविन्दकवित्वमस्तु॥५

इति श्रीगीतगोविन्दे महाकाव्ये जयदेवपण्डितकृतौ सुप्रीतपीताम्बरो नाम द्वादशः सर्गः समाप्तः ॥१२॥

माता राधा देवी पिता श्रीभोजदेवके पुत्र श्रीजयदेव कविकी यह गीत गोविन्द कविता पराशरादिक पूर्व कवियोंके कण्ठमें समर्पित हो ॥ ५ ॥

इतिमोरेश्वरशर्मा देशमुख विरचित भाषाटीका-
नुवादित गीतगोविन्दकाव्य समाप्त ।



राधाविनोदकाव्यम्

मालीनो घनमाली मालीनो वनमाली
मालीनो वलमाली मालीनोऽवतु माली ॥ १ ॥

विधुसुहृद्विरहानलपीडिता विधुसुहृत्तरलाऽनिलपीडिता ।
विधुसुहृद्वदनाऽनिलपाडिता विधुसुहृत्सुगिरोऽकिरदीडिता ॥ २ ॥

उदयते दयते दयते शशी सखि करैरकरैस्तिमिराकरैः ।
दिशमिमां चर मां च रमारमं कमलकोमललोलविलोचनम् ॥३॥

कुमुदबन्धुरबन्धुरबन्धुरः स तनुतेऽतनुते तनु ते ततः ।
हिमकरोऽहिमता हिमतां मतां किमनु मां सदृशंसदृशं विधोः ॥४॥

कमलिनीमलिना मलिनाऽलिना विचलताचलतासुलताशुभाम् ।
विधुतभां विधुतां विधुभानुभि–र्नयनयोरनयोर्नयलीनयोः ॥ ५ ॥
सखि विभाति विभाऽतिऽविभाऽविभा न सरसीसरसारससारसैः ।
अलिकुलैर्विधुना विधुता धुता विनमदब्जमुखीविमुखी स्थिता ॥६॥
कुमुदिनीदयितो दयितोनतां निजकरैरकरैर्दहति स्फुटम् ।
यदयमेकपदे विपदेऽभव–द्विकचपुष्करिणीहारिणीदृशः ॥ ७ ॥
विधुरिता धुरिता धुरितादहन् विधुरयं जनितो जनितोऽङ्कभृत् ।
इह तदत्विगते त्विगतेऽब्जिनी रविमतिर्भ्रमतिर्निमिमील सा ॥८॥
मलयपन्नगपन्नगमण्डली—कवलितो बलितो नु वनानिलः ।
अदयमङ्गमदङ्ग मदङ्गकं दहति यद् भ्रमयद् भ्रमयन्नयम् ॥ ९ ॥
अयि रसालवनी नवनीरनी––रनवनी नवनीपवनीवती ।

अलिकुलालिकुलाऽलिकुलाकुला प्रतिहि मामहिमामहिमा हिमा
बकुलमाकुलमालि पराजितं मधुपरागपरागपरालिभिः ।
विशदशारदशारदशारदं शशकलङ्ककलङ्ककलङ्कितम् ॥ ११ ॥
नवमशोकमशोकमशोकदे सुरभितारभिताखिरतारतम् ।
सखि समाश्रयमाश्रयमाश्रयः कमलिनीमखिलीप इवाऽगतः ॥१
सखि हिताऽसितासि मतात्थ मां नवमशोकमशोकमशोकदाम्
तदिह माधव माधवमासमां व्रज हरिं नवनीरदनीरदम् ॥ १
इति सखीगदिताऽगदिताऽदिता—नवनराय वराय वराय वा
इति गिरं कलया कलया कला पटुगिरा मृदुता मृदुताद्रुता ॥१
मलयजं तनुतेऽतनु ते तनौ सहचरीनलिनी नलिनीदलम् ।
सुनयनाऽनलदं नलदं च सा तदपि सीदति सीदति बन्धुता ॥
समुदितेऽमुदितेऽमुदितेऽत्वयं हिमकरेमकरेनकरे श्रुती ।
पिकरवेऽवरवेवर वेति सा हरिवलांछनलांछनलांछना ॥ १६
न सहते सहते सह ते सखी तव वियोगवियोगमयोगहृत् ।
सपदि तां तरुणीं सरणिं मणिं किरतु नाम नवं नवनीविजम् ॥
अथ तया कलया कलया शुभां वनजदामजदामजदीप्तिमान् ।
हरिरगात्तमगात्तमगात्त सा मुदमतीवमतीवदृशोः स्थितम् ॥१
रामचन्द्रकविना कविनाऽदः पुरुषोत्तमसुतेन सुतेन ।
राधिकाहृदयशोकदमासी—द्राधिकाहृदयशोकदमासीत् ॥१६

इति श्रीपुरुषोत्तमात्मजजनार्दननन्दनरामचन्द्रकविकृतं
राधाविनोदाख्यं काव्यं समाप्तम् ॥

प्रथम सर्ग	4	वसन्ततिलकाद्रुतम्	द्रुतविलम्बितेन
	"		झारखुब विभीडेतेन
	5		
	"	मालव	रूपक
द्वितीय प्रबन्ध	10	गुर्जरी	प्रतिमठ
	13	वसन्त	रूपक
	18	रामकली	"
द्वितीय सर्ग	22	गुर्जरी	"
	27	मालव	एकताली
तृतीय सर्ग	33	गुर्जरी	प्रतिमठ
			एकताली
चतुर्थ सर्ग	41	कर्णाटक	एकताली
	45	देशाख्य	रूपक
पञ्चम सर्ग	51	देशवराड़ी	एकताली
"	54	गुर्जरी	"
षष्ठ सर्ग	61	"	रूपक
सप्तम सर्ग	76	देशाख	"
अष्टम सर्ग	81	गुर्जरी	रूपक
नवम "	86	गुर्जरी	आड्ड
दशम "	90	देशवराड़ी	रूपक
एकादश "	99	वसन्त	आड्ड
	105	वराड़ी	रूपक
	108	वराड़ी	
द्वादश "	113	विभास	एकताली

[illegible]

ताल = 1 रूपक। प्रतिमठ। एकताली। निःसार। आड्ड। यतिः। तालमालिका। ...

मुद्रक—बम्बई प्रेस, वाराणसी।